स्व. प्रो. ए. चक्रवर्ती, मद्रास

एवं

स्व. डॉ. ए. एन. उपाध्ये

को

सादर समर्पित

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय

डॉ कमलचदजी सोगाणी द्वारा चयनित एव सम्पादित "समयसार-चयनिका" नामक प्रस्तुत पुस्तिका प्राकृत भारती के 52वें पुष्प के रूप मे प्रकाशित हो रही है।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह चयनिका आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार ग्रन्थ के आधार पर तैयार की गई है। आचार्य कुन्दकुन्द अपने समय के जैन सैद्धान्तिक साहित्य एव शौरसेनी प्राकृत के दिग्गज विद्वान् ही नही, अपितु जैन परम्परा प्रसूत अनेकान्तवाद के प्रबल पक्षधर एव प्रचारक भी थे। जैन परम्परा ने इन्हे न केवल विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न मनीषि ही माना है अपितु प्रात स्मरणीय मगलकारी आचार्य भी माना है। जिस प्रकार श्वेताम्बर परम्परा ने भगवान् महावीर और गौतम गणधर के पश्चात् स्थूलभद्र[1] आदि को मगलकारक माना है वैसे ही दिगम्बर परम्परा ने भगवान् महावीर और गौतमगणि के अनन्तर आचार्य कुन्दकुन्द[2] आदि को मगलकारक मानकर श्रद्धास्पद स्थान दिया है।

आचार्य कुन्दकुन्द-निर्मित मुख्यत 5 कृतियाँ हैं — 1 अष्टपाहुड, 2 नियमसार, 3. प्रवचनसार, 4 पचास्तिकाय और 5. समयसार। इनका समग्र साहित्य आज के सन्दर्भ मे अध्ययन और प्रचार-प्रसार की दृष्टि से सर्वोपरि माना जाता है।

---

1 मगल भगवान् वीरो मगल गौतमो प्रभु ।
मगल स्थूलभद्राद्या, जैन धर्मोस्तु मंगलम् ॥

2 मगल भगवान् वीरो, मगल गौतमो गणि ।
मगल कुन्दकुन्दाद्या, जैन धर्मोस्तु मगलम् ॥

समयसार मे उनकी विचार-सरणि जैन दर्शन, कर्म सिद्धान्त, रत्नत्रयी और अनेकान्तवाद का विशदता के साथ विश्लेषण करती है। आठवें बन्धाधिकार की 40वी गाथा मे उल्लेख है :—

आयारादी णाण जीवादी दसण च विण्णेय।
छज्जीवणिक च तहा भणदि चरित्त तु ववहारो। (138)

आचाराग आदि (आगमो) मे (गति) ज्ञान समझा जाना चाहिए और जीव आदि (तत्त्वो मे) (रुचि) दर्शन (सम्यग् दर्शन) (समझा जाना चाहिए)। छ जीव समूह के प्रति (करुणा) चारित्र (समझा जाना चाहिए)। इस प्रकार व्यवहार (नय) कहता है। षड्जीवनिकाय की चर्चा वर्तमान मे प्राप्त आचाराग सूत्र मे यथावत् उपलब्ध है।

समयसार का परिचय—इस ग्रन्थ का मूल नाम है "समय-पाहुड" अर्थात् समयप्राभृत। ग्रन्थ मे तीन स्थानो पर "समयसार" का उल्लेख भी प्राप्त होता है। वर्तमान समय मे समयसार नाम ही प्रसिद्ध है। समय का अर्थ है आत्मा और सार का अर्थ है शुद्ध स्वरूप, अर्थात् अभेदरत्नत्रयरूप विशुद्ध आत्म-स्वरूप का इसमे वर्णन होने से इस ग्रन्थ का नाम समयसार है, जो सार्थक है।

इसकी दूसरी व्युत्पत्ति भी है :—समय का अर्थ है सिद्धान्त और सार का अर्थ है तत्त्व/तात्पर्य/निष्कर्ष। अर्थात् सिद्धान्त/आगम-गत तत्त्वो का जिसमे निचोड हो, सार हो, वह समयसार है। ग्रन्थगत तात्त्विक प्रतिपादन से यह अर्थ भी सार्थक है।

समयसार की भाषा शौरसेनी प्राकृत है। 415 गाथाओ मे मुख्यत गाथा/आर्या छन्द का और कतिपय मे आर्या छन्द के भेदो

का प्रयोग देखने को मिलता है। ग्रन्थ मे मुख्यत' दस विभाग/ अधिकार हैं, जो निम्न हैं —

1 जीव, 2 जीवाजीव, 3 कर्तृ-कर्म, 4 पुण्य-पाप, 5. आस्रव, 6 सवर, 7. निर्जरा, 8 बन्ध, 9 मोक्ष और 10 विशुद्ध ज्ञान। इनमे से कर्तृ-कर्माधिकार और विशुद्ध ज्ञानाधिकार अलग करदें तो 8 अधिकारो मे जैन दर्शन मान्य नव तत्त्वो के स्वरूप का विशद विश्लेषण प्राप्त होता है। कर्तृ-कर्माधिकार मे आत्मा की स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के कारणो पर व्यवहार और निश्चय की दृष्टि से मार्मिक वर्णन है और विशुद्ध ज्ञानाधिकार मे आत्मिक विशुद्ध ज्ञानादि गुणो की उपादेयता पर दार्शनिक एव अध्यात्मिक दृष्टि से विवेचन उपलब्ध है।

वस्तुत समयसार, दार्शनिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से एक अनुपम ग्रन्थ है। आ कुन्दकुन्द अनेकान्तवाद के पक्षधर होने से उन्होने कही भी ऐकान्तिकता को न अपनाकर व्यवहार और निश्चय को, प्रयोजनवत्ता की सापेक्ष दृष्टि को आधार मानकर दोनो का सन्तुलन बनाये रखा है। अपेक्षा भेद से कही व्यवहार को प्रमुखता दी है, तो कही निश्चय को तथा कही दोनो ही का मत प्रस्तुत किया है।

चयनिका—डॉ सोगाणी मुक्ताओ का चयन/सग्रह कर सजाने/सम्पादन मे सिद्धहस्त हैं। समयसार की 415 गाथाओ में से केवल 160 गाथाओ का चयन कर, सवार कर इन्होने प्रस्तुत चयनिका सम्पादित की है। गाथाओ का अर्थ करने की और व्याकरणिक विश्लेषण की डॉ सोगाणीजी की अपनी स्वतन्त्र और विशिष्ट प्रक्रिया/शैली है। तदनुरूप ही इन्होने अपनी शैली मे विस्तृत प्रस्तावना के साथ यह चयनिका तैयार कर प्राकृत भारती को सहर्ष प्रकाशनार्थ प्रदान की है।

प्राकृत भारती इससे पूर्व डॉ सोगाणीजी की आचारांग चयनिका, दशवैकालिक चयनिका, उत्तराध्ययन चयनिका, अष्ट-पाहुड चयनिका आदि 8 पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है और कई चयनिकायें प्रकाशित करने वाली है।

डॉ कमलचन्दजी सोगाणी प्राकृत भाषा के अनन्य उपासक होने से इनका प्राकृत भारती के साथ प्रारम्भ से ही तादात्म्य सम्बन्ध रहा है। वर्तमान मे मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर के दर्शन विभाग के प्रोफेसर पद से 31 अगस्त, 88 को सेवा-निवृत्त होकर, जयपुर मे निवास कर रहे हैं और प्राकृत भारती की गतिविधियो मे सक्रिय सहयोग दे रहे हैं।

हमे आशा है पाठकगण इस चयनिका के माध्यम से आचार्य कुन्दकुन्द के दृष्टिकोण को सुगमता के साथ हृदयगम कर सकेंगे और प्राकृत भाषा के जानकार एव उसके उन्नयन मे सहभागी बन सकेंगे।

निदेशक
म. विनयसागर
प्राकृत भारती अकादमी
जयपुर

सचिव
देवेन्द्रराज मेहता

प्रस्तावना

यह सर्वविदित है कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही रगो को देखता है, ध्वनियो को सुनता है, स्पर्शों का अनुभव करता है, स्वादो को चखता है तथा गधो को ग्रहण करता है। इस तरह उसकी सभी इन्द्रियाँ सक्रिय होती है। वह जानता है कि उसके चारो ओर पहाड है, तालाब हैं, वृक्ष हैं, मकान है, मिट्टी के टीले हैं, पत्थर हैं इत्यादि। आकाश मे वह सूर्य, चन्द्रमा और तारो को देखता है। ये सभी वस्तुएँ उसके तथ्यात्मक जगत का निर्माण करती है। इस प्रकार वह विविध वस्तुओ के बीच अपने को पाता है। उन्ही वस्तुओ से वह भोजन, पानी, हवा आदि प्राप्त कर अपना जीवन चलाता है। उन वस्तुओ का उपयोग अपने लिये करने के कारण वह वस्तु-जगत का एक प्रकार से सम्राट बन जाता है। अपनी विविध इच्छाओ की तृप्ति भी बहुत सीमा तक वह वस्तु-जगत से ही कर लेता है। यह मनुष्य की चेतना का एक आयाम है।

धीरे-धीरे मनुष्य की चेतना एक नया मोड लेती है। मनुष्य समझने लगता है कि इस जगत मे उसके जैसे दूसरे मनुष्य भी है, जो उसकी तरह हँसते हैं, रोते हैं, सुखी-दुखी होते हैं। वे उसकी तरह विचारो, भावनाओ और क्रियाओ की अभिव्यक्ति करते हैं। चूँकि मनुष्य अपने चारो ओर की वस्तुओ का उपयोग अपने लिये करने का अभ्यस्त होता है, अत वह अपनी

इस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर मनुष्यो का उपयोग भी अपनी आकाक्षाओ और आशाओ की पूर्ति के लिए ही करता है। वह चाहने लगता है कि सभी उसी के लिये जीएँ। उसकी निगाह मे दूसरे मनुष्य वस्तुओ से अधिक कुछ नही होते हैं। किन्तु उसकी यह प्रवृत्ति बहुत समय तक चल नही पाती है। इसका कारण स्पष्ट है। दूसरे मनुष्य भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति मे रत होते हैं। इसके फलस्वरूप उनमे शक्ति-वृद्धि की महत्त्वाकाक्षा का उदय होता है। जो मनुष्य शक्ति-वृद्धि मे सफल होता है, वह दूसरे मनुष्यो का वस्तुओ की तरह उपयोग करने मे समर्थ हो जाता है। पर मनुष्य की यह स्थिति घोर तनाव की स्थिति होती है। अधिकाश मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे इस तनाव की स्थिति मे से गुजर चुके होते है। इसमे कोई सदेह नही कि यह तनाव लम्बे समय तक मनुष्य के लिए असहनीय होता है। इस असहनीय तनाव के साथ-साथ मनुष्य कभी न कभी दूसरे मनुष्यो का वस्तुओ की तरह उपयोग करने मे असफल हो जाता है। ये क्षण उसके पुनर्विचार के क्षण होते हैं। वह गहराई से मनुष्य-प्रकृति के विषय मे सोचना प्रारम्भ करता है, जिसके फलस्वरूप उसमे सहसा प्रत्येक मनुष्य के लिए सम्मान-भाव का उदय होता है। वह अब मनुष्य-मनुष्य की समानता और उसकी स्वतन्त्रता का पोषक बनने लगता है। वह अब उनका अपने लिए उपयोग करने के बजाय अपना उपयोग उनके लिये करना चाहता है। वह उनका शोषण करने के स्थान पर उनके विकास के लिये चिन्तन प्रारम्भ करता है। वह स्व-उदय के बजाय सर्वोदय का इच्छुक हो जाता है। वह सेवा लेने के स्थान पर सेवा करने को महत्त्व देने लगता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसे तनाव-मुक्त कर देती है और वह एक प्रकार से विशिष्ट व्यक्ति बन जाता है। उसमे एक असाधारण

अनुभूति का जन्म होता है। इस अनुभूति को ही हम मूल्यो की अनुभूति कहते हैं। वह अब वस्तु-जगत मे जीते हुए भी मूल्य-जगत मे जीने लगता है। उसका मूल्य जगत मे जीना धीरे-धीरे गहराई की ओर बढता जाता है। वह अब मानव-मूल्यो की खोज मे सलग्न हो जाता है। वह मूल्यो के लिए ही जीता है और समाज मे उनकी अनुभूति बढे इसके लिये अपना जीवन समर्पित कर देता है। यह मनुष्य की चेतना का एक दूसरा आयाम है।

समयसार मे मुख्य रूप से सर्वोपरि आध्यात्मिक मूल्यो की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। इसका उद्देश्य समाज मे ऐसे

समयसार में 415 गाथाएँ हैं। इनमे से ही हमने 160 गाथाओ का चयन 'समयसार-चयनिका' के अन्तर्गत किया है। इसके रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द दक्षिण के निवासी थे। इनका मूल स्थान कोण्डकुन्द था जो आध्रप्रदेश के अनन्तपुर जिले मे स्थित कोनकोण्डल है। इनका समय 1 ई पूर्व से लगाकर 528 ई पश्चात् तक माना गया है। डो ए एन उपाध्ये के अनुसार इनका समय ईस्वी सन् के प्रारम्भ मे रखा गया है। "I am inclined to believe, after this long survey of the available material, that Kundakunda's age lies at the beginning of the Christian era" (P 21 Introduction of Pravacanasara)

आचार्य कुन्दकुन्द के सभी ग्रन्थ (समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकायसार, नियमसार, अष्टपाहुड आदि) अध्यात्म प्रधान शैली मे लिखे गये होने के कारण अध्यात्म-प्रेमी लोगो के लिए आकर्षण के केन्द्र रहे हैं।

व्यक्तियो का निर्माण करना है जो स्वचेतना की स्वतन्त्रता को जी सके। स्वचेतना की किंचित भी परतन्त्रता समयसार को मान्य नही है। चेतना की अतुलनीय गहराइयो मे व्यक्ति को लीन करना समयसार को इष्ट है। चेतन–अस्तित्व के गहनतम स्तरो को व्यक्ति छू सके और परतन्त्रता को त्यागने की प्रेरणा प्राप्त कर सके–यही समयसार का अपूर्व सदेश है। जन्म-जन्मो से व्यक्ति ने इन्द्रियो की परतन्त्रता को स्वीकार कर रखा है। इन्द्रिय-विषय ही सदैव उसे आकर्षित करते रहते हैं। इन्द्रिय-पुष्टि का जीवन ही उसे स्वाभाविक लगता है। बाह्य विषयो मे जकडा हुआ ही वह अपनी जीवन–यात्रा चलाता है। अपने अस्तित्व की स्वतन्त्रता का उसे कोई भान ही नही हो पाता है। विषयातीत अनुभव उसके लिए दुर्लभ रहता है। समयसार का कहना है कि चेतना की अद्वितीय स्वतन्त्रता, उसकी समतामयी स्थिति की गाथा व्यक्ति के लिए सुलभ नही है (1)। व्यक्ति इन्द्रिय-विषयो से इतना आत्मसात् किए हुए होता है कि विषयो की ही वार्ता उसको रुचिकर लगती है। वस्तुओ और व्यक्तियो से बधा हुआ ही वह जीता जाता है। चेतना को वस्तुओ और व्यक्तियो से बधना स्वाभाविक प्रतीत होता है। इस कारण व्यक्ति को चेतना बाह्य का ही आलिंगन करती रहती है और अपनी स्वतन्त्रता को खोकर मानसिक तनाव से ग्रस्त बनी रहती है। यही व्यक्ति की अज्ञान अवस्था है।

यहा यह ध्यान देने योग्य है कि समयसार व्यक्ति को अन्तर्मुखी बनाना चाहता है, जिससे वह चेतना/आत्मा को परतन्त्र बनानेवाले कारणो को समझ सके। सच तो यह है कि आत्मा की परतन्त्रता मानसिक तनाव मे ही अभिव्यक्त होती है। तनाव-मुक्ति आत्म–स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति है। समयसार का

शिक्षण है कि परतन्त्रता की लबी यात्रा यद्यपि व्यक्ति कर चुका है, फिर भी परतन्त्रता के विद्यमान कारण आत्मा की स्वतन्त्रता का हरण किंचित मात्र भी नही कर सकते हैं। स्वतन्त्रता आत्मा का स्वभाव है, परतन्त्रता कारणो के द्वारा थोपी हुई है। सच यह है कि इन कारणो को व्यक्ति इतना दृढता से पकडे हुए है कि परतन्त्रता स्वाभाविक प्रतीत होती है, किन्तु मानसिक तनाव की उत्पत्ति इस स्वाभाविकता के लिए चुनौती है। आत्मा की स्वतन्त्रता और मानसिक तनाव की उत्पत्ति एक दूसरे के विरोधी हैं। जहाँ आत्मा की स्वतन्त्रता है, वहाँ तनाव-मुक्ति है, वहाँ ही समतामय जीवन है। जहाँ आत्मा की परतन्त्रता है, वहाँ मानसिक तनाव है, वहाँ ही द्वन्द्वात्मक जीवन है। चेतन अस्तित्व (आत्मा) को स्वतन्त्र समझने की दृष्टि निश्चयनय है और उसको परतन्त्र मानने की दृष्टि व्यवहारनय है। जब आत्मा की (पर से) स्वतन्त्रता स्वाभाविक है, तो आत्मा की परतन्त्रता अस्वाभाविक है। इसीलिए कहा गया है कि निश्चयनय (शुद्धनय) वास्तविक है और व्यवहारनय अवास्तविक है (4)। ठीक ही है, जो दृष्टि स्वतन्त्रता का बोध कराये वह दृष्टि वास्तविक ही होगी और जो दृष्टि परतन्त्रता के आधार से निर्मित हो, वह अवास्तविक ही रहेगी। समयसार का कथन है कि जो दृष्टि आत्मा को स्थायी, अनुपम, कर्मों के बन्ध से रहित, रागादि से न छुआ हुआ, अन्य से अमिश्रित देखती है, वह निश्चयनयात्मक दृष्टि है (6, 7)। इतना होते हुए भी परतन्त्रता का जीवन जीनेवाले को व्यवहारनय के माध्यम से ही समझाया जा सकता है (১)। एक एक करके परतन्त्रता के कारणो का विश्लेषण अप्रत्यक्ष रूप से आत्मा की स्वतन्त्रता की यशोगाथा है। इसीलिए कहा गया है कि व्यवहारनय के

आश्रय के बिना स्वतन्त्रतारूपी सर्वोच्च सत्य की समझ सम्भव नही है (3)। जब व्यवहारनय यह कहता है कि चेतन आत्मा और पुद्गलात्मक देह अभिन्न हैं, तो उन दोनो को अभिन्न समझने के कारणो का और अभिन्नता से उत्पन्न परिणामो का विश्लेषण करने से व्यवहारनय की सीमाओ का ज्ञान व्यक्ति को हो जाता है। इन सीमाओ के ज्ञान से व्यक्ति आत्मा की स्वतन्त्रता की ओर देखने लगता है और उसमे निश्चय-दृष्टि उत्पन्न होती है तथा आत्मा और देह की भिन्नता का ज्ञान उदित होता है (13)। सीमित को सीमित समझने से असीमित की ओर प्रस्थान होता है। इसी प्रकार व्यवहार को व्यवहार समझने से निश्चय की ओर गमन होता है। व्यवहार द्वारा उपदिष्ट आत्मा और देह की एकता को जो यथार्थ मानता है, वह अज्ञानी है और जो उसे अयथार्थ मानता है, वही ज्ञानी है (10, 11, 12)। चूंकि देह पर है, इसलिए केवली (समतावान) के देह की स्तुति करना भी निश्चय-दृष्टि से उपयुक्त नही है। जो समतावान के आत्मानुभव की विशेषताओकी स्तुति करता है, वह ही निश्चयदृष्टि से स्तुति करता है (14) ठीक ही है, जैसे नगर का वर्णन कर देने से राजा का वर्णन नही होता है, वैसे ही देह की विशेषताओ की स्तुति कर लेने से शुद्ध आत्मारूपी राजा की स्तुति नही हो पाती है (15)। अत समयसार का शिक्षण है कि जैसे कोई भी धन का इच्छुक मनुष्य राजा को जानकर उस पर श्रद्धा करता है और तब उसका बडी सावधानीपूर्वक अनुसरण करता है, वैसे ही परम शान्ति के इच्छुक मनुष्य के द्वारा आत्मारूपी राजा समझा जाना चाहिए तथा श्रद्धा किया जाना चाहिए और फिर निस्सन्देह वह ही अनुसरण किया जाना चाहिए (8, 9)।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निश्चयनय मे आत्मा मे पुद्गल के कोई भी गुण नही है। अत आत्मा रस-रहित, रूप-रहित, गंध-रहित, शब्द-रहित तथा अदृश्यमान है। उसका स्वभाव चेतना है। उसका ग्रहण बिना किसी चिन्ह के (केवल अनुभव से) होता है और उसका आकार अप्रतिपादित है (20, 21)। यदि व्यवहारनय से आत्मा मे पुद्गल के गुण कहे गहे हैं (26) तो यह समझा जाना चाहिए कि वर्णादि के साथ जीव (आत्मा) का सम्बन्ध दूध और जल के समान अस्थिर है। वे वर्णादि आत्मा मे स्थिररूप से बिल्कुल ही नही रहते हैं, क्योकि आत्मा तो ज्ञान-गुण से ओत-प्रोत होता है (23)। समयसार का कथन है कि जैसे मार्ग मे व्यक्ति को लूटा जाता हुआ देखकर सामान्य लोग कहते हैं कि यह मार्ग लूटा जाता है। किन्तु वास्तव मे कोई मार्ग लूटा नही जाता है, लूटा तो व्यक्ति जाता है (24), उसी प्रकार ससार मे व्यवहारनय के आश्रित लोग कहते हैं कि वर्णादि जीव के हैं (26), किन्तु वास्तव मे वे देह के गुण हैं, जीव के नही। मुक्त (स्वतन्त्रता को प्राप्त) जीवो मे किसी भी प्रकार के वर्णादि नही होते हैं (27)। यदि इन गुणो को निश्चय से जीव का माना जायेगा तो जीव और अजीव मे कोई भेद ही नही रहेगा (28)।

आत्मा और कर्म :

व्यक्ति जन्म-जन्मो से कर्मों को लिए हुए उत्पन्न होता है। ऐसी देह-युक्त आत्मा (व्यक्ति) मन, वचन और काय की क्रियायो मे सलग्न रहती है। जब व्यक्ति इनके माध्यम से क्रियाओ को करता है, तो वे सभी क्रियायें सवेगो से प्रेरित होकर ही उत्पन्न होती हैं। जैसे, क्रोध से प्रेरित होकर मन-वचन-काय की क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार दूसरे सवेगो (कषायो)

(मान, माया, लोभ करुणा आदि) से प्रेरित होकर क्रियाएँ हो सकती हैं। ये क्रियाएँ दूसरो को प्रभावित करें या न करें, किन्तु व्यक्ति को तो अवश्य ही प्रभावित कर देती हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व इनके प्रभाव से परिवर्तित होता दिखाई देता है। यह प्रभाव या परिवर्तन सस्कार के रूप मे व्यक्ति मे सचित होता चलता है। ये सचित सस्कार सवेग-जनित क्रियाओ को उत्पन्न करते हैं और फिर उनसे निर्मित सस्कार एकत्रित होते रहते हैं। ये सस्कार ही पुद्गलात्मक परमाणुओ के रूप मे आत्मा के साथ सलग्न हो जाते हैं। इन्हे ही कर्म कहा जाता है। ये कर्म ही जब विभिन्न कारणो से क्रियाशील होते हैं, तो मानसिक तनाव का कारण बन जाते हैं। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि सवेग-जनित क्रियाओ से ही व्यक्तित्व पर प्रभाव उत्पन्न होता है और यह प्रभाव ही सचित हो जाता है। इसे ही आश्रव और बध कहा जाता है। क्रियाओ के प्रभाव की उत्पत्ति और सचय क्रमश आश्रव और बध कहे जाते हैं।

यहाँ यह समझना चाहिए कि व्यक्ति जन्म-जन्मो मे कर्मों के आश्रव और बध के कारण ही परतन्त्रता का जीवन जीता चलता है। मानसिक तनाव इस परतत्रता की ही अभिव्यक्ति है। इतना होते हुए भी कर्म आत्मा के स्वतन्त्र स्वभाव को नष्ट नही कर सकते हैं। समयसार का कथन है कि जिस प्रकार मैल के घने सयोग से ढकी हुई वस्त्र की सफेद अवस्था अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार अज्ञानरूपी मैल से ढका हुआ ज्ञान अदृश्य हो जाता है (84)। इसी प्रकार मूर्च्छारूपी मैल से ढका हुआ सम्यक्त्व और कषायरूपी मैल से ढका हुआ स्वरूपाचरण चारित्र अदृश्य हो जाता है (83, 85)। निस्सन्देह कर्मों ने चेतना की स्वतन्त्रता को आच्छादित किया है (86), जिसके फलस्वरूप परतन्त्रता पनपी

है, किन्तु समयसार का शिक्षण है कि ये आश्रव (कर्म) यद्यपि आत्मा (जीव) से जुड़े हुए हैं, फिर भी ये अलग होने योग्य होते हैं ये अस्थिर हैं तथा स्थायी सहारे-रहित है (34)। साथ ही ये कर्म जो मानसिक तनाव उत्पन्न करते हैं स्वयं दुःख रूप होते हैं और दुःख को उत्पत्ति का कारण बनते हैं तथा दुःख-परिणामवाले रहते है (32,34)। ज्ञान का उदय होने पर व्यक्ति इनसे दूर होने के लिए तत्पर होता ही है (31,32)। अज्ञान की स्थिति मे व्यक्ति इन मानसिक तनाव उत्पन्न करनेवाले कर्मों से एकीकरण किया हुआ जीता है और मानसिक तनावो की परम्परा को जन्म देता रहता है और उसे आत्मा और कर्म (मानसिक तनाव) मे भेद नजर नही आता है, जिसके फलस्वरूप वह क्रोधादि कषायो से एकमेक रहकर दुःखी होता रहता है (29,30)। जिस क्षण व्यक्ति को यह ज्ञात हो जाता है कि उसकी चेतना अपने मूलरूप मे शुद्ध (स्वतन्त्र/तनाव-मुक्त) है, कषायरहित है, ज्ञान-दर्शन से ओतप्रोत है, उसी क्षण मे मानसिक तनाव विदा होने लगते हैं (33)।

यहाँ प्रश्न है कि आत्मा से कर्मों (मानसिक तनावो) के सयोग का क्या कारण है? यह बात सर्वविदित है कि व्यक्ति वस्तुओ और मनुष्यों/प्राणियो के मध्य रहता है। यदि हम जांच कर तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक मानसिक तनाव के मूल मे कोई न कोई वस्तु या मनुष्य/प्राणी विद्यमान होता है। यदि क्रोध व्यक्ति के प्रति होता है तो लोभ वस्तु के प्रति होता है। इससे यह निष्कर्ष निकालना कि मनुष्यो/प्राणियो और वस्तुओ से कर्म-बन्धन होता है, अनुचित है। समयसार का कहना है कि निस्सन्देह वस्तु और मनुष्य/प्राणी को आश्रय करके कषाएँ उत्पन्न होती हैं, फिर भी वस्तु आदि से कर्म-बन्धन (मानसिक तनाव) नही होता है।

उसका वास्तविक, मूलभूत कारण वस्तु आदि के प्रति आसक्ति ही है (100, 135)। जैसे कोई व्यक्ति शरीर पर चिकनाई लगा कर धूल से भरे स्थान मे काय-चेष्टा मे सलग्न हो जाए तो उस मनुष्य के शरीर से धूल का सयोग चिकनाई के अस्तित्व के कारण होगा, केवल काय-चेष्टा से नही। इसी प्रकार वस्तुओ और मनुष्यो/प्राणियो के जगत मे उनके प्रति रागादि (आसक्ति) के कारण कर्म-धूल का सयोग व्यक्ति के होता है, वस्तुओ और मनुष्यो/प्राणियो के कारण नही (127 से 130)। व्यक्ति की आसक्ति रहित प्रवृत्ति से उसके कोई कर्म-बन्धन (मानसिक तनाव) नही होगा (131)। जब मानसिक तनाव उत्पन्न होता है, तो सामान्यतया यह कहा जाता है कि व्यक्ति ऐसी परिस्थितियो से अपने को अलग करले। किन्तु यहाँ यह समझना चाहिए कि इसमे मानसिक तनाव दब सकता है, दूर नही हो सकता है। निश्चय से तो मानसिक तनाव का कारण राग है, आसक्ति हैं, व्यक्ति और वस्तु नही। व्यवहार से व्यक्ति/प्राणी और वस्तु को मानसिक तनाव का कारण कह दिया जाता है। अत समयसार का शिक्षण है कि निश्चयनय के द्वारा व्यवहारनय स्वीकार नही किया जा सकता है, यद्यपि जगत मे मानसिक तनाव के लिए मनुष्यो/प्राणियो और वस्तुओ को ही जिम्मेदार माना जाता है। किन्तु समयसार हमारा ध्यान कर्म-बधन के वास्तविक कारण, आसक्ति की ओर आकर्षित करता है, क्योकि इसको दूर करने से ही शान्ति मिल सकती है। अतः निश्चयनय के आश्रित ज्ञानी ही (आसक्ति के मिटने से) परम शान्ति प्राप्त करते हैं (136)। सच तो यह है कि समयसार व्यक्तित्व को बदलने पर जोर देता हैं। यही मानसिक तनाव (कर्म-बन्धन) की समस्या का स्थायी हल है। मनुष्यो/प्राणियो और वस्तुओ मे बाह्य परिवर्तन सामाजिक दृष्टिकोण से

उपयोगी तो है, पर व्यक्ति की समस्या का वास्तविक समाधान नही है। अत व्यवहारनय उपयोगी होते हुए भी शनै शनै त्याज्य है। समयसार का शिक्षण है कि अज्ञानी (व्यवहारनय पर आश्रित) सब वस्तुओ मे आसक्त होता है, इसलिए कर्मरूपी रज से मलिन किया जाता है जिस प्रकार कीचड मे पडा हुआ लोहा मलिन किया जाता है। किन्तु ज्ञानी (निश्चयनय पर आश्रित) सब वस्तुओ मे राग (आसक्ति) का त्यागी होता है, इसलिए वह कर्मरूपीरज (मानसिक तनावरूपीरज) से मलिन नही किया जाता है, जिस प्रकार कनक कीचड मे पडा हुआ मलिन नही किया जाता है (113, 112)। ठीक ही है, जब तक चेतना की परतन्त्रता (मानसिक तनाव) का कारण आसक्ति समाप्त न हो, तब तक चेतना की स्वतन्त्रता (तनाव-मुक्ति) कैसे घटित हो सकती है?

अज्ञानी मनुष्य की दशा :

स्वचेतना (आत्मा) की स्वतन्त्रता का विस्मरण ही अज्ञान है। इस विस्मरण का कारण है कि जन्म-जन्मो से आत्मा ने कर्मो के साथ एकीकरण स्थापित कर रखा है। इस एकीकरण के कारण ही आत्मा आसक्ति-जन्य प्रवृतियो मे तल्लीन रहता है, जिसके कारण दुख-पूर्ण मानसिक तनावो से वह घिर जाता है और परतन्त्रता का जीवन जीता है। वह ससार मे अज्ञान के कारण विभिन्न प्रकार के चेतन-अचेतन द्रव्यों से एकीकरण स्थापित करता रहता है (10,11,12)। समयसार का कथन है कि पर द्रव्य को आत्मा में ग्रहण करता हुआ तथा आत्मा को भी पर द्रव्य मे रखता हुआ व्यक्ति अज्ञानमय (मूच्छित) होता है (46, 48)। चूंकि अज्ञानी अपनी क्रोधादि सवेगात्मक अवस्थाओं से एकीकरण कर लेता है, इसलिए उसके सभी भाव अज्ञानमय होते हैं (62, 64)। समयसार का कहना है कि जैसे कनकमय वस्तु से कुण्डल आदि वस्तुए

उत्पन्न होती हैं और लोहमय वस्तु से कडे आदि उत्पन्न होते हैं वैसे ही अज्ञानी के अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होते है (66)। अज्ञानी आत्म-स्वभाव को न जानता हुआ राग और आत्मा को एक ही मानता है (94)। वह कर्म के फल का सु ख-दु ख रूप से अनुभव करता है। चूंकि ज्ञानी के सभी भाव ज्ञानमय होते है. अत वह कर्म के फल का ज्ञाता-द्रष्टा होता है, उसे सुख-दु खरूत से अनुभव नही करता है (149, 151, 152)। वह ज्ञानी क्रोधादि सवेगो से, जो कर्म के कारण आत्मा मे उत्पन्न हुए हैं तथा कर्मों से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के फलो से आत्मसात् नही करता है (35, 36, 37)। ज्ञानी कर्म के फल को अनासक्ति-पूर्वक ही भोगता है (99), किन्तु अज्ञानी आसक्तिपूर्वक कर्म के फल को भोगने के कारण कर्मों (मानसिक तनावो) के बोझ को बढाता रहता है।

आत्मा का कर्तृत्व : (ज्ञानी और अज्ञानी कर्ता)

मनुष्य विभिन्न प्रकार के सवेगो का अनुभव करता है। इस तरह उसमे काम, क्रोध, लाभ, ईर्ष्या, भय, दया, प्रेम, कृतज्ञता आदि सवेग क्रियाशील होते हैं। इन सवेगो के कारण ही पुद्गल-कर्म-परमाणु आत्मा से जुड जाते हैं और फिर ये कर्म-परमाण समय पाकर आत्मा को सवेगात्मक रूप मे परिवर्तित करते रहते हैं (39)। इसे अस्वीकार नही किया जा सकता है कि ये सभी सवेग मनुष्य मे मानसिक तनाव की उत्पत्ति करते हैं, जो मनुष्य मे दु ख का करण बनते हैं। यह स्थिति उस समय उत्पन्न होती है, जब व्यक्ति इन सवेगो से एकोकरण करके जीता है। अत यह उसकी अज्ञान अवस्था का ही द्योतक है। समयसार का कथन है कि अज्ञानी आत्मा ही इन सवेगो का कर्ता होता है, इसलिए वह

अज्ञानी कर्ता है (49, 61)। यह कर्तृत्व आत्मा की परतन्त्रता को बतानेवाला है। चूँकि ज्ञानी आत्मा की स्वतन्त्रता का पारखी होता है, इसलिए वह इन संवेगों में एकीकरण नहीं करता है और इनका ज्ञायक बना रहता है। यहां समयसार का कहना है कि ज्ञानी कषायों (संवेगों) को बिल्कुल नहीं करता है। वह उनका कर्ता नहीं है (41, 139)। पुद्गल-कर्म के द्वारा उत्पन्न किए हुए किसी भी संवेग (कषाय) का आत्मा कर्ता नहीं है (41)। ज्ञानी हर समय पर के आश्रयरहित होता है। वह स्वशासित रहता है तथा ज्ञायक सत्तामात्र बना रहता है (111)। ज्ञानी की यह विशेषता है कि वह दुःखात्मक कर्मों का उदय होने पर भी अपने ज्ञानीपन को नहीं छोड़ता है, जैसे आग में तपाया हुआ सोना अपने कनक-स्वभाव को नहीं छोड़ता है (93)। जैसे विष खा लेने पर भी कोई वैद्य विषनाशक प्रक्रिया अपनाने के कारण मरण को प्राप्त नहीं होता है, वैसे ही ज्ञानी पुद्गल-कर्म के उदय को अनासक्तिपूर्वक भोगने के कारण कर्मों में नहीं बांधा जाता है और मानसिक तनाव का शिकार नहीं होता है (99)।

अज्ञानी आत्मा अपने संवेगों के कारण पुद्गल-कर्मों से युक्त होता है (39)। इस तरह जैसे वह संवेगों का अज्ञानी कर्ता होता है, वैसे ही वह पुद्गल कर्मों का भी अज्ञानी कर्ता होता है और उन्हीं का भोक्ता भी होता है (43)। समयसार का कथन है कि व्यवहारनय के अनुसार आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्मों को करता है तथा वह अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म के फलों को ही भोगता है (43)। चूँकि व्यवहारनय चेतना की परतन्त्रता से निर्मित दृष्टि है, इसलिए अज्ञानी कर्ता व्यवहारनय के आश्रय से चलता है (53)। निश्चयनय के अनुसार आत्मा पुद्गल कर्मों को

उत्पन्न नही करता है (53)। चूँकि निश्चयदृष्टि चेतना की स्वतन्त्रता पर आश्रित दृष्टि है, इसलिए ज्ञानी कर्ता निश्चयनय के आश्रय से चलता है । जीव (आत्मा) के द्वारा कर्म किया गया है, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है (57)। योद्धाओ द्वारा युद्ध किए जाने पर, राजा के द्वारा युद्ध किया गया हैं, इस प्रकार लोक कहता है। उसी प्रकार व्यवहार से कहा जाता है कि अज्ञानी आत्मा के द्वारा कर्म किया गया है (58) सच तो यह है कि आत्मा जिस भाव को अपने मे उत्पन्न करता है, उसका वह कर्ता होता है। ज्ञानी का यह भाव ज्ञानमय होता है और अज्ञानी का भाव अज्ञानमय होता है (61)। ज्ञानी शुद्ध भावो (अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रि सुख आदि) का कर्ता होता है और इसके विपरीत अज्ञानी अशुद्ध भावो (काम, क्रोध आदि) का कर्ता होता है । ज्ञानी ज्ञाता-द्रष्टा होता है (147, 148), इसलिए कर्मा के फल को व उनके बन्ध को जानने वाला होता है, सुख-दुखात्मक फल को भोगनेवाला नही होता है (151, 152)। अज्ञानी कर्मो के फल व उनके बंध के साथ एकीकरण कर लेता है, इसलिए सुख-दुखात्मक फल को भोगनेवाला होता है (43)।

यदि यह मान लिया जाए कि ज्ञानी अपने शुद्ध भावो का कर्ता व भोक्ता होने के साथ-साथ पुद्गल कर्म का भी कर्ता और भोक्ता होता है, तो ऐसा होने से ज्ञानी दो विरोधी क्रियाओ से युक्त हो जायेगा (44)। एक ओर तो हमे मानना होगा कि वह ज्ञानी स्व भावो का ही कर्ता और भोक्ता है,तथा दूसरी ओर मानना होगा कि वह ज्ञानी पर भावो का भी कर्ता और भोक्ता है। यह दोनो विरोधी क्रियाएँ सभव नही है। यदि हम यह मानते हैं कि ज्ञानी पर भावो का कर्ता व भोक्ता है, तो ज्ञानी को पर भावो से

तन्मय होना पडेगा, (51) क्योकि कर्ता होने की यह शर्त है कि उसे उस रूप परिवर्तित होना अनिवार्य है (51)। यह स्वीकार किया गया है कि स्वभाव विरुद्ध होने के कारण ज्ञानी कर्ता पुद्गल कर्मरूप या सवेग-जनित क्रियारूप परिवर्तित नही हो सकता है, अत वह उनका कर्ता नही हो सकता है (51)। कोई भी चेतन सत्ता पुद्गल कर्मरूप या पुद्गल कर्म से उत्पन्न भावरूप परिवर्तित नही हो सकती है। समयसार का कहना है कि पर द्रव्य को आत्मा मे ग्रहण न करता हुआ तथा आत्मा को भी पर द्रव्य मे न रखता हुआ मनुष्य ज्ञानमय होता है। वह कर्मों का अकर्ता है (47)। मनुष्य अज्ञान के कारण पर द्रव्यो को आत्मा मे ग्रहण करता है और आत्मा को भी पर द्रव्य मे रखता है। वह अज्ञानी कर्ता है (46, 49)। ज्ञानी कर्ता सब प्रकार के अज्ञानमय कर्तृत्व को छोड देता है (49)।

यहाँ यह समझना चाहिए कि जैसे अज्ञानी (परतन्त्र) व्यक्ति सवेग-जनित पुद्गल कर्मों का तथा कर्म-जनित सवेगो का कर्ता होता है, उसी प्रकार वह इस लोक मे विविध सवेगो से प्रेरित क्रियाओ का तथा घडा, कपडा, रथ आदि का कर्ता होता है (50)। वह कर्तृत्व के अहकार से ग्रसित होता है। इस कारण उसके मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। यदि ज्ञानी (स्वतन्त्र) व्यक्ति घडा, कपडा आदि पर द्रव्यो को बनाए तथा विविध सवेग-जनित क्रियायो को करे, तो उसे उन रूप परिवर्तित होना पडेगा। यह असभव है। अत वह वास्तव मे उनका कर्ता नही हो सकता है(51)। इस तरह यहाँ कहा जा सकता है कि व्यवहार से आत्मा उनका कर्ता है, किन्तु निश्चय से नही (50)। ज्ञानी मे कर्तृत्व का अहकार नही होता है इसलिए उसमे मानसिक तनाव पैदा नही होता है। समाज की अपेक्षा ज्ञानी और अज्ञानी दोनो ही

वस्तुओ व क्रियाओ के कर्ता हैं। उन दोनो मे भेद अतरग की अपेक्षा से होता है। एक अहकारशून्य जीव है, तो दूसरा अहकारमयी। एक मानसिक तनाव से मुक्त है, तो दूसरा मानसिक तनाव से घिरा हुआ।

नैतिक दृष्टिकोण से भाव दो प्रकार के होते है शुभ भाव और अशुभ भाव। गुणियो मे अनुराग, दु खियो के प्रति करुणा आदि शुभ भाव हैं। अहकार, कुटिलता आदि अशुभ भाव हैं। अज्ञानी व्यक्ति इन दोनो भावो से एकीकरण कर लेता है और परतन्त्र बन जाता है। अज्ञानी इन दोनो भावो का कर्ता व भोक्ता होता है (54)। इनमे वह रूपान्तरित होकर मानसिक तनाव का जनक होता है। ज्ञानी शुद्ध भावो (अतीन्द्रिय सुख, ज्ञान आदि) का कर्ता होता है। वह मासिक तनाव से मुक्त होता है। वह शुभ अशुभ भावो का ज्ञाता-द्रष्टा होता है। ज्ञाता-द्रष्टा होने से ज्ञानी कर्ता का इनसे एकीकरण नष्ट हो जाता है और उसके मानसिक तनाव बिदा हो जाते हैं।

स्वतन्त्रता का स्मरण सम्यग्दर्शन .

ऊपर बताया जा चुका है कि जब व्यक्ति परतन्त्रता का जीवन जीता है, तब वह पर भावो तथा पर द्रव्यो मे एकीकरण कर लेता है। इस एकीकरण के कारण उसमे वस्तुओ व व्यक्तियो के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है और उनके विषय मे आसक्तिपूर्ण चिन्तन की धारा उसमे प्रवाहित होने लगती है। इस आसक्ति से ही उसमे काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, कुटिलता आदि उत्पन्न होते हैं जिनके फलस्वरूप वह मानसिक तनाव से ग्रस्त रहता है। वह (परतन्त्र) व्यक्ति कर्मो का कर्ता, उनसे उत्पन्न कषायो (सवेगो) का कर्ता, वस्तुओ का कर्ता तथा शुभ-अशुभ भावो का कर्ता अपने

का मानने के कारण सुख-दुःखात्मक परिणामो को भोगनेवाला होता है। इस तरह से वह द्वन्द्वात्मक जीवन जीता है और मानसिक तनाव मे फँस जाता है। अज्ञानी का कर्तृत्व परतन्त्रता का पोषक होता है। व्यवहारनय परतन्त्रता से उत्पन्न दृष्टि का सूचक है। वह परतन्त्र दृष्टि का द्योतक है। चूँकि परतन्त्र दृष्टि वास्तविकता का बोध करानेवाली नही हो सकती है इसलिए व्यवहारनय अवास्तविकता का ही बोध कराता है। इस कारण से वह अवास्तविक है, असत्य है, अशाश्वत है। जो व्यवहारनय का आश्रय लेता है, वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, मूर्च्छित है। अज्ञानी का एक मात्र लक्षण यह है कि उसे स्वचेतना की स्वतन्त्रता का विस्मरण हो जाता है। मूर्च्छारूपी मैल उस पर छा जाता है और स्वतन्त्रता अदृश्य हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे मैल से वस्त्र की सफेद अवस्था अदृश्य हो जाती है (83)। परतन्त्रता-रहित अवस्था ही वास्तविकता है। यही स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति है। निश्चयनय स्वतन्त्रता से प्राप्त दृष्टि का सूचक है। यह ही वास्तविकता का बोध कराता है। इसलिए यह वास्तविक है, सत्य है और शाश्वत है। जो वास्तविकता का आश्रय लेता है, वह ज्ञानी है, सम्यग्दृष्टि है, और जागृत है (4)। ज्ञानी को, सम्यग्दृष्टि को स्वचेतना की स्वतन्त्रता का स्मरण हो जाता है। स्वतन्त्रता का स्मरण ही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि को शुद्ध आत्मा पर श्रद्धा हो जाती है, उसके स्वतन्त्र स्वभाव पर श्रद्धा हो जाती है (81)। सम्यग्दृष्टि आत्मा को और उसके ज्ञायक स्वभाव को जानता है (102)। वह आत्मा और अनात्मा मे भेद करने लगता है (104)। सम्यग्दृष्टि प्रज्ञावान होता है। समयसार का कथन है कि यह आत्मा प्रज्ञा के द्वारा ही ग्रहण की जाती है। वह आत्मा निश्चय से 'मैं' हूँ (146)। जो द्रष्टा-भाव और ज्ञाता-

भाव है, वही 'मैं' हूँ (147, 148)। जो शेप भाव है, वे मुझ से भिन्न है (147, 148)। इस तरह से स्वचेतना की स्वतन्त्रता का स्मरण होते ही व्यक्ति मे ज्ञाता-द्रष्टा भाव का उदय हो जाता है, उसकी प्रज्ञा जागृत हो जाती है, उसकी शुद्ध आत्मा पर दृष्टि लग जाती है और वह व्यक्ति निश्चय पर आश्रित हो जाता है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि स्वचेतना की स्वतन्त्रता का स्मरण होने से, ज्ञाता-द्रष्टा भाव का उदय होने से, प्रज्ञा के जागृत होने से, शुद्ध आत्मा पर श्रद्धा होने से, निश्चयनय पर आश्रित होने से सम्यग्दृष्टि मे निम्नलिखित विशेषताएँ पैदा हो जाती है (1) सम्यग्दृष्टि की आत्मा मे श्रद्धा होती है, इसलिए उसको स्वचेतना की स्वतन्त्रता मे कोई शका नही होती है। इस कारण से वह निर्भय हो जाता है। (1) सातो[1] प्रकार के भय उसके जीवन से निकल जाते हैं (118)। (2) वह किसी भी शुभ क्रिया से फल-प्राप्ति की चाहना नही करता हैं तथा उससे उत्पन्न कर्म-फल को भी नही चाहता है (119)। (3) वह जीवन मे किसी भी सेवा-कार्य के प्रति घृणा नही करता है (120)। (4) वह सभी (तथाकथित) शुभ कार्यो मे मूढतारहित होता है। उनके प्रति उचित दृष्टिकोण अपनाता है। समाज मे शुभ समझे जाने वाले वहुत से कार्य मूर्खतापूर्ण हो सकते हैं। उनको करने का कोई सवल तार्किक आधार नही होता है। सम्यग्दृष्टि ऐसे कार्यो को त्याग देता है और तार्किक दृष्टि अपनाता है (121)। (5) वह शुद्धात्मा की भक्ति से युक्त होता है। वह दूसरो की भलाई के कार्यो को गुप्त रखता है। उनको उजागर करके वह

1 सात भय लोक-भय, परलोक-भय, अरक्षा-भय, अगुप्ति-भय, (सयल हीन होने का भय), मृत्यु-भय, वेदना-भय और अकस्मात-भय।

दूसरो को लघुता का अनुभव कभी नही कराता है (122)। (6) वह यदि कषायो के दबाव से सद्मार्ग से विचलित हो जाता है, तो भी अपने को पुन सद्मार्ग मे स्थापित कर लेता है (123)। (7) वह परम शान्ति के मार्ग मे स्थित साधुओ के प्रति वात्सल्यता प्रकट करता है। (8) वह समतादर्शी द्वारा प्रतिपादित ज्ञान की महिमा का प्रसार करता है (124)। इस प्रसार के लिए नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यो का जीवन जीता है। समयसार का कथन है कि वह विद्या (अध्यात्म-ज्ञान) रूपी रथ पर बैठा हुआ सकल्परूपी नायक के द्वारा विभिन्न स्थानो पर भ्रमण करता है (125)।

व्यक्ति के जीवन मे सम्यग्दर्शन का उदय एक सारगर्भित घटना है। इससे उसके व्यक्तित्व मे आमूल-चूल आन्तरिक परिवर्तन हो जाता है। उसे स्वचेतना की स्वतन्त्र अवस्था और और परतन्त्र अवस्था मे मौलिक भेद समझ मे आ जाता है। वह अब स्वतन्त्रता के मार्गदर्शन मे जीने की कला विकसित कर लेता है उसमे यह ज्ञान विकसित हो जाता है कि शुद्ध ज्ञानात्मक चेतना मे क्रोधादि कषाएँ नही रहती हैं (91)। कर्मों के अनेक फल उसके स्वभाव नही है। वह तो ज्ञायक सत्ता है (101)। वह जीवन मे लोकोपयोगी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्रियाओ मे प्रवृत्ति करता हुआ उनमे रागादि(आसक्ति) से मुक्त रहता है, इसलिए मानसिक तनाव से मलिन नही किया जाता है(131)। वह स्वतन्त्र आत्मा और परतन्त्रता से उत्पन्न कर्मों (मानसिक तनावो) का भेद समझ लेता है (31)। अत वह नये कर्मों (मानसिक तनावो) को नियन्त्रित कर लेता है (90)। वह कर्मो के फलो को ज्ञाता-द्रष्टा भाव से भोगता है। वह वस्तुओ को उपयोग मे लाते हुए भी उन पर आश्रित नही होता

है, क्योंकि वह अनासक्ति का जीवन जीता है (100)। उसे इन्द्रिय-विषयो मे बिल्कुल ही राग नही होता (158)।

स्वतन्त्रता की साधना

स्व चेतना की स्वतन्त्रता का स्मरण होने के पश्चात् सम्यग्दृष्टि के जीवन मे एक ऐसे ज्ञान का उदय होता है जो उसे चारित्र की साधना करने के लिए प्रेरित करता है। चारित्र की साधना के महत्व को समझाते हुए समयसार का कथन है कि जिस व्यक्ति मे रागादि भावो (मानसिक तनाव) का अश मात्र भी विद्यमान है,वह आगम का धारक होते हुए भी स्वतन्त्रता के महत्व को पूरी तरह नही समझा है(103)। जो व्यक्ति शुद्धात्मा (स्वतन्त्रता) पर निर्भर नही है, किन्तु यदि वह बाह्य तप और व्रत धारण करता है, तो भी वह अबोध तप और अबोध व्रत ही कर रहा है (78)। व्रतो और नयमो को धारण करते हुए तथा शील और तप का पालन करते हुए जो व्यक्ति शुद्ध आत्म-तत्व से अपरिचित है वे परम शान्ति को प्राप्त नही करते है। कुछ परतन्त्रतावादी व्यक्ति ऐसे होते हैं कि यदि वे आगम ग्रन्थो का अध्ययन भी करते है तो बौद्धिक ज्ञान को चाहे वे प्राप्त करले, पर आत्मज्ञानरूपी फल को वे उत्पन्न नही कर पाते है(137)। वे परतन्त्रतावादी अपने अज्ञान-स्वभाव को नही छोडते है, जैसे सर्प गुडसहित दूध को पीते हुए भी विषरहित नही होता है (150)। अत. कर्मो (मानसिक तनावो) से छुटकारा पाने के लिए आत्मा के ज्ञायक स्वभाव का ज्ञान, आत्मा की स्वतन्त्रता का ज्ञान या जीव-अजीव के भेद का ज्ञान ग्रहण किया जाना चाहिए (104, 105, 102)। समयसार का शिक्षण है कि यदि व्यक्ति इसमे ही सदा सलग्न रहे, इससे सदा सतुष्ट हो, इससे ही तृप्त हो, तो उसे उत्तम सुख प्राप्त हो जायेगा (106)। ज्ञान और चारित्र के महत्व को समझाते हुए

समयसार का कहना है कि प्रज्ञा(ज्ञान+चारित्र) के द्वारा ही आत्मा (स्वतन्त्रता) का अनुभव किया जाना चाहिए (145)। प्रज्ञा के द्वारा जीव तथा कर्म-बन्धन को विभक्त करने के कारण ही वे दोनो अलग अलग हो जाते हैं (143)। इस प्रज्ञा के द्वारा जो ग्रहण किए जाने योग्य है, वह आत्मा (स्वतन्त्रता) निश्चय से 'मैं' हूँ। जो अवशिष्ट वस्तुएँ है, वे मेरे से भिन्न है (146)। ज्ञाता-द्रष्टा भाव और (वास्तविक) 'मैं' अभिन्न हैं (147, 148)। इसे प्रज्ञा (ज्ञान+चारित्र) के द्वारा ग्रहण किया जाना चाहिए (147)।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि समयसार के अनुसार स्वतन्त्रता की साधना का अर्थ है आन्तरिक विकासोन्मुख आध्यात्मिक परिवर्तन। समयसार का यह विश्वास प्रतीत होता है कि व्यक्ति विभिन्न सामाजिक कारणो से प्रेरित होकर वाह्य साधना तो आसानी से कर लेता है, पर आन्तरिक साधना जो एक अकेली यात्रा है, व्यक्ति कठिनाई से कर पाता है। केवल वाह्य साधना से सामाजिक सतुष्टि तो होती है, पर आध्यात्मिक आन्तरिक विकास नही हो पता है। इस कारण व्यक्ति लम्बे समय तक वाह्य साधना करने के पश्चात् भी अपनी जीवन पद्धति को नही बदल पाता है। अत कहा जा सकता है कि शुद्ध आत्मा की ओर दृष्टि हुए विना नियम, व्रत आदि का पालन सामाजिक दृष्टिकोण से उपयोगी होते हुए भी व्यक्ति के लिए व्यर्थ ही सिद्ध होता है। ऐसा होने से व्यक्ति के मानसिक तनाव कम होने के स्थान पर वढ जाते है। वे योगी जो परमार्थ (आध्यात्मिक आन्तरिक परिवर्तन) का अभ्यास करते है, वे ही मानसिक तनावो का क्षय कर पाते हैं (82)। जो लोग निश्चय (आध्यात्मिक आन्तरिक परिवर्तन) की सार्थकता को छोड़ कर व्यवहार (केवल वाह्य तप आदि) मे प्रवृत्ति करते हैं, वे मानसिक तनावो को नष्ट

नही कर पाते हैं। इस तरह से वे लोग स्वतन्त्रता की साधना के स्थान पर परतन्त्रता की साधना करने लग जाते हैं। अत कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता की साधना व्यक्तित्व का आध्यात्मिक आन्तरिक परिवर्तन है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि कर्म-बन्धन (परतन्त्रता/मानसिक तनाव) के विषय मे चिन्ता करने से कर्म-बन्धन (मानसिक तनाव) नष्ट नही होता है (140)। चिन्ता व्याकुलता को जन्म देती है, इस कारण व्यक्ति अपने उद्देश्य की प्राप्ति मे सफल नही हो पाता है। जो कर्म-बन्धन से उदासीन हो जाता है, जो वस्तुओ मे आसक्ति को त्यागता है, वही उससे छुटकारा पाता है और परम शान्ति प्राप्त करता है (141, 142)। साधना मे पाप (अशुभ क्रिया) का त्याग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिंसक क्रिया के त्याग के साथ हिंसा के विचार का त्याग आवश्यक है। समयसार का शिक्षण है कि व्यक्ति प्राणियो की हिंसा कर पावे अथवा उनकी हिंसा न भी कर पावे, तो भी उसके हिंसा के विचार से ही कर्म-बंध होता है। निश्चयनय के अनुसार यह व्यक्तियो के कर्म-बंध के कारण का संक्षेप है (133)। इसी प्रकार असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह के आसक्तिपूर्ण विचार को त्यागना ही विकास की ओर जाना है (132)। बाह्य पापपूर्ण क्रियाओ का त्याग समाज के लिए तो उपयोगी है,पर आन्तरिक त्याग के बिना व्यक्ति का विकास नही होता है। पाप (अशुभ क्रिया) के बीज का नाश ही व्यक्ति व समाज मे स्थायी परिवर्तन ला सकता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह आदि का विचार पुण्य लाता है (134)। पुण्य शुभ क्रिया का ग्रहण है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि बहुत से व्यक्ति पुण्य (शुभ-क्रिया) मे ही अटक जाते हैं।

यह पुण्य (शुभ-क्रिया) समाजको तो व्यवस्थित करता है, किन्तु इसकी उपस्थिति मे व्यक्ति मानसिक तनाव से ग्रसित रहता है।[1] अत जो क्रिया मानसिक तनाव मे प्रवेश कराती है वह उपयुक्त कैसे कही जा सकती है ? इस तरह से जैसे पाप (अशुभ क्रिया) कर्म-बध (मानमिक तनाव), वैसे ही पुण्य(शुभ क्रिया) भी कर्म-बध (मानसिक तनाव) का कारण है। ये दोनो ही व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास मे वाधक है। समयसार का शिक्षण है कि जैसे काले लोहे से वनी हुई वेडी व्यक्ति को वांधती है और सोने की वेडी भी व्यक्ति को वाधती है, उसी प्रकार व्यक्ति द्वारा की हुई शुभ-अशुभ (मानसिक तनावात्मक) क्रिया भी उसको परतन्त्र बनाती है(72)। अत समयसार का शिक्षण है कि व्यक्ति मानसिक तनाव उत्पन्न करनेवाले दोनो कुशीलो (शुभ-अशुभ क्रियाओ) के साथ बिल्कुल राग/आसक्ति न करे, उनके साथ सम्पर्क भी न रखे, क्योकि आत्मा का स्वतन्त्र स्वभाव कुशीलो के साथ सम्पर्क और उनके साथ राग से व्यर्थ हो जाता है (73)। जैसे कोई व्यक्ति निन्दित आचरणवाले मनुष्य को जानकर उसके साथ ससर्ग को और राग करने को छोड देता है, वैसे ही पाप-पुण्य की, शुभ-अशुभ क्रियाओ की आध्यात्मिक रूप से निन्दित प्रकृति को जानकर स्वभाव मे लीन व्यक्ति उनके साथ सवध छोड देते हैं और उनके साथ राग/आसक्ति को तज देते है (74, 75)। किन्तु जो व्यक्ति शुद्ध आत्मा (स्वतन्त्रता) से अपरिचित हैं, वे ही पुण्य (शुभ क्रिया) मे आसक्त रहते हैं (80)। अष्टपाहुड-चयनिका की प्रस्तावना मे लेखक द्वारा यह स्पष्ट किया जा चुका है कि शुभ भावो से प्रेरित शुभ-क्रियाओ से समाज आगे बढता है, किन्तु व्यक्ति मानसिक तनाव से दु खी रहता है। समयसार परतन्त्रता/मानसिक तनाव को

---

1 विस्तार के लिए देखें, अष्टपाहुड-चयनिका की प्रस्तावना।

समाप्त करने की बात कहता है, जिससे शुद्ध क्रियाएँ (शुभ क्रिया-मानसिक तनाव) की जा सकें। मानसिक तनावरहित शुभक्रियाएँ (शुद्ध क्रियाएँ) व्यक्ति व समाज दोनों के लिए हितकर हैं।

यहाँ यह समझना चाहिए कि स्वतन्त्रता की साधना में इच्छाओं का त्याग महत्वपूर्ण है। इच्छाओं के कारण व्यक्ति वस्तुओं को आसक्तिपूर्वक अपनाता है, शुभ-अशुभ क्रियाओं को भी आसक्तिपूर्वक करता है। इच्छारहित व्यक्ति आसक्तिरहित होता है। अत वह शुभ क्रियाओं तथा अशुभ क्रियाओं को नही चाहता है। वह उनका ज्ञायक होता है (103, 110)। यदि उसकी कोई जीवनोपयोगी वस्तु किसी के द्वारा छिन्न-भिन्न करदी जाती है तोड दी जाती है, अथवा ले जाई जाती है अथवा वह सर्वनाश को प्राप्त हो जाती है या किसी कारण से दूर चली जाती है, तो भी उसे मानसिक तनाव नही होता है, क्योंकि उसकी वस्तु मे आसक्ति नही है (108)। स्वतन्त्रता का साधक सदैव पर वस्तु के आश्रय-रहित होता है। वह स्वशासित रहता है, तथा ज्ञायक सत्ता मात्र बना रहता है (111)।

यहाँ प्रश्न है साधना मे वेष का क्या महत्व है ? इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि वेष निश्चय ही परम शान्ति का मार्ग नही है (155)। लोक मे नाना प्रकार के साधुओं के वेष और गृहस्थोके वेष प्रचलित हैं। मूढ व्यक्ति किसी विशेष वेष को ही परम शान्ति/स्वतन्त्रता का मार्ग बताता है (154), किन्तु कोई भी वेष परमशान्ति/स्वतन्त्रता का मार्ग नही हो सकता है (156)। इसलिए समयसार का शिक्षण है कि गृहस्थो और साधुओ के द्वारा धारण किए हुए वेषो की बात को त्यागकर व्यक्ति को सम्यग्दर्शन (स्वतन्त्रता का स्मरण), सम्यक्ज्ञान (स्वतन्त्रता का ज्ञान) और

सम्यक्चारित्र (स्वतन्त्रता मे रमण) की आराधना करनी चाहिए (155, 157)। दूसरे शब्दो मे, वेप के आग्रह को त्यागकर व्यक्ति मोक्ष (स्वतन्त्रता) के पथ मे आत्मा को स्थापित करे, उसका ही ध्यान करे, उसका ही अनुभव करे और वहाँ ही सदा रहे (158)। जो लोग वहुत प्रकार के साधु-वेपो मे तथा गृहस्थ-वेषो मे ममत्व करते हैं, वे समयसार (आत्मानुभव/स्वतन्त्रता क अनुभव) से अनभिज्ञ है (159)। समयसार का शिक्षण है कि व्यवहारनय दोनो ही वेषो को स्वतन्त्रता की साधना मे उपयुक्त मानता है, किन्तु निश्चयनय किसी भी वेप को स्वतन्त्रता की साधना मे स्वीकृति प्रदान नही करता है (160)।

पूर्णता का अनुभव

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समयसार निश्चयनय और व्यवहारनय से विपय का प्रतिपादन करता है। निश्चयनय चेतना की स्वतन्त्रता से उत्पन्न दृष्टि है, और व्यवहारनय चेतना की परतन्त्रता से उत्पन्न दृष्टि है। ये दोनो ही वौद्धिक दृष्टियाँ हैं। किन्तु पूर्णता का अनुभव नयातीत है (60, 70)। वह बुद्धि से परे है। इसी अनुभव को हम जव दूसरो तक पहुँचाने का प्रयास करते हैं, तो नयो का सहारा लेना पडता है। इसके अलावा हमारे पास कोई रास्ता भी तो नही है। इस रास्ते पर चलने से अनुभव की समग्रता खो जाती है, और वह खण्ड-खण्ड रूप मे सामाजिक बन जाती है। सच तो यह है कि आत्मा (स्वतन्त्रता) मे स्थिर व्यक्ति दोनो नयो के कथनो को केवल जानता है। वह थोडी भी नयदृष्टि को ग्रहण नही करता है (69)। निस्सन्देह बुद्धि महत्वपूर्ण होती है, पर उसका महत्व सीमित रहता है। अनुभव के समक्ष वह निस्तेज वन जाती है। नयात्मक दृष्टि बुद्धि का कौशल है।

किन्तु पूर्णता का अनुभवी व्यक्ति बुद्धि के चातुर्य को त्यागकर अनुभव की सीढी पर चढ जाता है। यहाँ ही आत्मानुभव की अखण्डता, अनन्तता और द्वन्द्वातीतता प्रकट होती है।

समयसार चयनिका के उपर्युक्त विषय-विवेचन से स्पष्ट है कि समयसार मे जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। इसी विशेषता से प्रभावित होकर यह चयन (समयसार-चयनिका) पाठको के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है। गाथाओ के हिन्दी अनुवाद को मूलानुगामी बनाने का प्रयास किया गया है। यह दृष्टि रही है कि अनुवाद पढने से ही शब्दो की विभक्तियां एव उनके अर्थ समझ मे आ जाएँ। अनुवाद को प्रवाहमय बनाने की भी इच्छा रही है। कहाँ तक सफलता मिली है इसको तो पाठक ही बता सकेंगे। अनुवाद के अतिरिक्त गाथाओ का व्याकरणिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। इस विश्लेषण मे जिन सकेतो का प्रयोग किया गया है, उनको सकेत सूची मे देखकर समझा जा सकता है। यह आशा की जाती है कि चयनिका के अध्ययन से प्राकृत को व्यवस्थित रूप मे सीखने मे सहायता मिलेगी तथा व्याकरण के विभिन्न नियम सहज मे ही सीखे जा सकेंगे। यह सर्वविदित है कि किसी भी भाषा को सीखने के लिए व्याकरण का ज्ञान अत्यावश्यक है। प्रस्तुत गाथाएँ एव उनके व्याकरणिक विश्लेषण से व्याकरण के साथ-साथ शब्दो के प्रयोग भी सीखने में मदद मिलेगी। शब्दों की व्याकरण और उनका अर्थपूर्ण प्रयोग दोनो ही भाषा सीखने के आधार होते हैं। अनुवाद एवं व्याकरणिक विश्लेषण जैसा भी बन पाया है पाठको के समक्ष हैं। पाठको के सुझाव मेरे लिए बहुत ही काम के होगे।

आभार ·

समयसार-चयनिका के लिए श्री बलभद्र जैन द्वारा सपादित समयसार के संस्करण का उपयोग किया गया है। इसके लिए श्री वलभद्र जैन के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हू। समयसार का यह सस्करण श्री कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली से सन् 1978 मे प्रकाशित हुआ है।

मेरे विद्यार्थी डॉ. श्यामराव व्यास, सहायक प्रोफेसर, दर्शन-विभाग, सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर का आभारी हूँ, जिन्होने इस पुस्तक के अनुवाद एव इसकी प्रस्तावना को पढकर उपयोगी सुझाव दिए। डॉ हुकमचन्द जैन (जैन विद्या एव प्राकृत विभाग, सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर) डॉ सुभाष कोठारी तथा श्री सुरेश सिसोदिया (आगम, अहिंसा-समता एव प्राकृत सस्थान, उदयपुर) के सहयोग के लिए भी आभारी हूँ।

मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती कमला देवी सोगाणी ने इस पुस्तक की गाथाओ का मूल-ग्रन्थ से सहर्ष मिलान किया है तथा प्रूफ-सशोधन का कार्य रुचिपूर्वक किया है, अत मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर के सचिव श्री देवेन्द्रराज जी मेहता तथा सयुक्त सचिव एव निदेशक महोपाध्याय श्री विनयसागर जी ने जो व्यवस्था की है, उसके लिए उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

कमलचन्द सोगाणी

एच-7, चितरजन मार्ग,
'सी' स्कीम, जयपुर-302001 (राज)

समयसार - चयनिका

समयसार – चयनिका

1 सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा ।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥

2 तं एयत्तविहत्तं दाएह अप्पणो सविहवेण ।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं ॥

3 जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं ।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं ॥

4 ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥

समयसार–चयनिका

1 काम–भोग (सासारिक विपमता) के निरुपरण की कथा सब (मनुष्यो) के द्वारा निश्चय ही सुनी हुई (है), जानी हुई (है). (तथा) अनुभव की हुई (है), (किन्तु) केवल समतामयी अद्वितीयता का अनुभव ही सुलभ नही (हुआ है) ।

2 उस समतामयी अद्वितीयता को निज की स्व शक्ति से (मैं) प्रस्तुत करूँगा । यदि प्रस्तुत कर सकूँ, तो (वह) यथार्थ ज्ञान (होगा) (और) (यदि) चूक जाऊँ तो (समझना कि) अयथार्थता ग्रहण किये जाने योग्य नही (होती है) ।

3 जैसे अनार्य (व्यक्ति) अनार्य भाषा के विना पढने के लिए कभी समर्थ नही हुआ है, वैसे ही व्यवहार के विना परमार्थ (सर्वोच्च सत्य) का कथन सभव नही हुआ है ।

4. (जीवन मे महत्वपूर्ण होते हुए भी) व्यवहारनय अवास्तविक है (और) (अध्यात्म मार्ग मे) शुद्धनय ही वास्तविक कहा गया (है) । वास्तविकता पर आश्रित जीव ही सम्यग्दृष्टि होता है ।

5 सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं ।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ठिदा भावे ॥

6 जो पस्सदि अप्पाण अबद्धपुट्ठ अणण्णयं णियदं ।
अविसेसमसजुत्त त सुद्धणय वियाणाहि ॥

7 जो पस्सदि अप्पाण, अबद्धपुट्ठ अणण्णमविसेस ।
अपदेससुत्तमज्झ, पस्सदि जिणसासण सव्वं ॥

8 जह णाम को वि पुरिसो रायाण जाणिदूण सद्दहदि ।
तो त अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥

9 एव हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो ।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥

10 अहमेद एदमह अहमेदस्सेव होमि मम एद ।
अण्णं ज परदव्व सच्चित्ताचित्तमिस्स वा ॥

5 शुद्ध (आत्मा) का निरूपण शुद्धनय है, (जो) परम स्थिति को देखने वालो द्वारा (ही) समझा जाने योग्य (होता है)। और जो अ-परम स्थिति मे ठहरे हुए हैं (वे) ही व्यवहार के द्वारा उपदिष्ट (होते हैं)।

6 जो (नय) आत्मा को स्थायी, अद्वितीय, (कर्मों के) बन्ध से रहित, (रागादि से) न छुआ हुआ, (अतरग) भेद से रहित, (तथा) (अन्य से) अमिश्रित देखता है, उसको (तुम) शुद्ध नय जानो।

7 जो (आत्मा को) न बधी हुई (तथा) (कर्मों के द्वारा) मलिन न की हुई समझता है, (जो) (इसके अनुभव को) अद्वितीय (समझता है) और इसके अस्तित्व को (अन्तरगरूप से) भेदरहित (समझता है), (जो) (आत्मा को) क्षेत्ररहित, परिभाषारहित तथा मध्यरहित (समझता है), (वह) सम्पूर्ण जिन-शासन को समझता है।

8 जैसे कोई भी धन का इच्छुक मनुष्य राजा को जानकर (उस पर) श्रद्धा करता है, और तब उसका बडी सावधानी पूर्वक अनुसरण करता है,

9 वैसे ही परम शान्ति के इच्छुक (मनुष्य) के द्वारा आत्मारूपी राजा समझा जाना चाहिए तथा श्रद्धा किया जाना चाहिए और फिर निस्सन्देह वह ही अनुसरण किया जाना चाहिए।

10 जो भी कोई चेतन, अचेतन, मिश्र (चेतन-अचेतन) अन्य पर द्रव्य है, (उसके विषय मे यदि कोई व्यक्ति सोचे कि) मैं यह (पर द्रव्य) हूँ, यह (पर द्रव्य) मैं (हूँ) मैं इसके लिए ही (हूँ) मेरे लिए यह (है),

11 आसि मम पुव्वमेद अहमेदं चावि पुव्वकालम्हि ।
होहिदि पुणो वि मज्झ अहमेदं चावि होस्सामि ॥

12 एवं तु असंभूदं आदवियप्प करेदि समूढो ।
भूदत्थ जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ॥

13 ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु एक्को ।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एक्कट्ठो ॥

14 तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो ।
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ॥

15 णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥

16 जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधिय मुणदि आदं ।
त खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥

11 पहले यह (पर द्रव्य) मेरा था, फिर भी (यह) मेरे लिए होगा, पूर्वकाल मे भी मैं यह (पर द्रव्य) (था) (तथा) मैं भी यह (पर द्रव्य) होऊँगा, (तो वह अज्ञानी है) ।

12 इस प्रकार से ही (जो) विल्कुल अयथार्थ (मिथ्या) विकल्प को मन में विचारता है, (वह) अज्ञानी (है), और (जो) यथार्थ को जानता हुआ उस (मिथ्या विकल्प) को मन मे नही विचारता है, (वह) ज्ञानी है ।

13. व्यवहारनय कहता है (कि) जोव और देह एक (समान) होते हैं, परन्तु निश्चयनय के (अनुसार) जीव और देह कभी एक (समान) पदार्थ नही (होते हैं) ।

14 वह (केवली/समतावान/तनाव-मुक्त के पुद्गलमय शरीर की) (स्तुति) निश्चयदृष्टि से उपयुक्त नही होती है, क्योकि केवली के (आत्मानुभव मे) शरीर के गुण नही होते है। जो केवली (समतावान) के गुणो (आत्मानुभव की विशेपताओ) की स्तुति करता है, वह वास्तव मे केवली (समतावान) की स्तुति करता है ।

15 जैसे नगर का वर्णन किया हुआ होने पर भी, राजा का वर्णन किया हुआ नही होता है, (वैसे ही) देह-विशिष्टताओ की स्तुति किए जाते हुए होने पर भी अरहत (शुद्ध आत्मा) की विशिष्टताएँ स्तुति की हुई नही होती है ।

16 जो इन्द्रियासक्ति को जीतकर ज्ञानस्वभाव से ओतप्रोत आत्मा का अनुभव करता है, उस (व्यक्ति) को ही वे, जो पक्के साधु हैं, इन्द्रियो को जीतनेवाला कहते हैं ।

17 जह णाम को वि पुरिसो परदव्वमिण ति जाणिदु मुयदि ।
तह सव्वे परभावे णादूण विमुञ्चदे णाणी ॥

18 अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सयारूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्ण परमाणुमेत्त पि ॥

19 एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा ।
केवलिजिणेहि भणिदा किह ते जीवो त्ति वुच्चति ॥

20 अरसमरूवमगध अव्वत्त चेदणागुणमसद्द ।
जाण अलिगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥

21 जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो ।
ण वि रूव ण सरीरं ण वि संठाणं ण सहणणं ॥

22 जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो ।
णो पच्चया ण कम्म णोकम्म चावि से णत्थि ॥

17. जैसे कोई भी मनुष्य, यह पर वस्तु है, इस प्रकार जानकर (उसको) छोड देता है, वैसे ही ज्ञानी (मनुष्य) सभी पर भावो को समझकर (उनको) त्याग देता है।

18 मैं अनुपम (हूँ), निश्चय ही शुद्ध (हूं), दर्शन-ज्ञानमय (हूँ), सदा अमूर्तिक (अतीन्द्रिय) हूं, इसलिए कुछ भी दूसरी (वस्तु) परमाणु मात्र भी मेरी नही है।

19 (जब) अरिहत द्वारा ये सभी (रागादि) भाव (कर्म)-पुद्गल-द्रव्य के फल-स्वरूप उत्पन्न कहे गए (है) (तो) वे जीव (चेतन) (हैं), इस प्रकार कैसे कहे जाते हैं ? (यह समझ मे नही आता है)।

20 (यह) तुम जानो (कि) आत्मा रस-रहित, रूप-रहित, गध-रहित, शब्द-रहित तथा अदृश्यमान (है), (उसका) स्वभाव चेतना (है), (उसका) ग्रहण बिना किसी चिन्ह के (केवल अनुभव से) (होता है) और (उसका) आकार अप्रतिपादित (है)।

21. जीव मे (कोई) वर्ण नही (है), (उसमे) (कोई) गध भी नही है, (उसमे) (कोई) रस भी नही है, (उसमे) (कोई) स्पर्श भी नही (है), (उसमे) (कोई) शब्द भी नही (है), (उसका) (कोई) शरीर भी नही (है), (उसका) (कोई) आकार भी नही (है) (और) (उसमे) (किसी प्रकार की) अस्थि-रचना भी नही (है)।

22. जीव मे राग नही है, (उसमे) द्वेष भी नही (हैं), न ही (उसमे) मोह (है), न (उसमे) ज्ञेय पदार्थ (है), न ही (उसमे) कर्म (है) और (उसके) शरीरादि (नोकर्म) भी नही है।

23 एदेहि य संबंधो जहेव खीरोदय मुणेदव्वो ।
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा ॥

24 पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी ।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥

25 तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं ।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहि ववहारदो उत्तो ॥

26 गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य ।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥

27 तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी ।
संसारपमुक्काणं णत्थि दु वण्णादओ केई ॥

28 जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि ।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ॥

29 जाव ण वेदि विसेसंतर तु आदासवाण दोण्हं पि ।
अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो ॥

23 इन (वर्णादि) के साथ (जीव का) सवध दूध और जल के समान (अस्थिर) समझा जाना चाहिए। वे (वर्णादि) उसमे (जीव मे) (स्थिररूप से) बिल्कुल ही नही रहते है, क्योकि (जीव) तो ज्ञान–गुण से ओतप्रोत (होता है)।

24 मार्ग मे (व्यक्ति को) लूटा जाता हुआ देखकर सामान्य लोग कहते है (कि) यह मार्ग लूटा जाता है। किन्तु (वास्तव मे) कोई मार्ग लूटा नही जाता है, (लूटा तो व्यक्ति जाता है)।

25 उसी प्रकार जीव मे कर्म और नोकर्म से (उत्पन्न) वाह्य दिखाव–वनाव को देखकर, जिन के द्वारा कहा गया (है) (कि) यह दिखाव–वनाव व्यवहार से जीव का हो है।

26 जो गध, रस, स्पर्श और वर्ण (हैं), (जो) देह (है) तथा जो आकार आदि (है), (वे) सव व्यवहार से (जीव के) (जितेन्द्रियो द्वारा) कथित (है)। (ऐसा) निश्चय के जानकार कहते है।

27 उस (व्यवहार) अवस्था मे ससार (मानसिक तनाव) मे स्थित जीवो के वर्ण आदि होते है, परन्तु ससार (मानसिक तनाव) से मुक्त (जीवो) मे किसी भो प्रकार का वर्ण आदि नही होता है।

28 यदि (तू) निश्चय से इस प्रकार मानता है (कि) (जीव की) ये सव अवस्थाएँ निस्सदेह जीव ही (है), तो (तेरे लिए) जीव और अजीव मे कोई भेद ही नही रहेगा।

29 जव तक (व्यक्ति) आत्मा व आश्रव (कर्मो/मानसिक तनावो की उत्पत्ति) दोनो के ही विशेष भेद को नही समझता है, तव तक वह अज्ञानी (व्यक्ति) क्रोधादि को ही करता रहताहै।

30 कोहादिसु वट्टतस्स तस्स कम्मस्स संचग्रो होदि ।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं ॥

31 जइया इमेण जीवेण ग्रप्पणो ग्रासवाण य तहेव ।
णाद होदि विसेसंतर तु तइया ण बंधो से ॥

32 णादूण ग्रासवाण ग्रसुचित्तं च विवरीदभाव च ।
दुक्खस्स कारणं त्ति य, तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥

33 ग्रहमेक्को खलु सुद्धो य णिम्ममो णाणदंसणसमग्गो ।
तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खय णेमि ॥

34 जीवणिबद्धा एदे ग्रधुव ग्रणिच्चा तहा ग्रसरणा य ।
दुक्खा दुक्खफला त्ति य णादूण णिवत्तदे तेहिं ॥

35 ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु पोँग्गलकम्म ग्रणेयविह ॥

30 क्रोधादि को करते हुए उसके कर्म (मानसिक तनाव) का सचय होता है। इस प्रकार जीव के (कर्म) का बन्धन सवज्ञो द्वारा बताया गया (है)।

31 जिस समय इस व्यक्ति के द्वारा आत्मा और आश्रवो (कर्मों/मानसिक तनावो की उत्पत्ति) का विशिष्ट भेद (द्रष्टा भाव मे) जाना गया होता (है), उस समय उसके (कर्म) बन्ध (मानसिक तनाव) नही होता है।

32 आश्रवो (कर्मों/मानसिक तनावो की उत्पत्ति) की अमगलता और (उनको) (समताभाव से) विपरीत स्थिति को जान कर तथा (यह) (जानकर) (कि) (आश्रव) दु ख (अशान्ति) का कारण (है), जीव उससे दूर होने की क्रिया करता है।

33 मैं निश्चय ही अनुपम (हूँ), शुद्ध (हूँ), (अपने मूल रूप) मे आसक्तिरहित (हूँ) तथा (मैं) ज्ञान-दर्शन से ओतप्रोत (हूँ)। (इसलिए) उसमे (ही) मन लगाया हुआ तथा उसमे ही ठहरा हुआ (मैं) इन सब (आश्रवो/मानसिक तनावो की उत्पत्ति) का नाश करता हूँ।

34 ये (आश्रव/कर्म/मानसिक तनावो की उत्पत्ति) (यद्यपि) जीव से जुड़े हुए हैं, फिर भी (ये) अलग होने योग्य (होते हैं), (ये) अस्थिर हैं तथा (स्थायी) सहारे-रहित हैं। (ये) (स्वय) दु ख (है) तथा दु ख-परिणामवाले (हैं)। इस प्रकार जानकर (ज्ञानी) उनसे दूर हट जाता है।

35 निश्चय ही ज्ञानी अनेक प्रकार के पुद्गल-कर्म को (द्रष्टा भाव से) जानता हुआ (उस) पर द्रव्य की पर्याय मे कभी भी रूपान्तरित नही होता है, न (ही) (उसको) पकडता है और न (ही) (उसके साथ) आत्मसात् करता है।

36 ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणतो वि हु सगपरिणामं अणेयविह ।।

37 ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु पोॅग्गलकम्मफल अणतं ।।

38 ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए ।
पोॅग्गलदव्वं पि तहा परिणमदि सगेहि भावेहि ।।

39 जीव परिणामहेदु कम्मत्तं पोॅग्गला परिणमंति ।
पोॅग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ।।

40 ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्म तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि ।

41 एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सगेण भावेण ।
पोॅग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ।।

36 निश्चय ही ज्ञानी (राग-द्वेषात्मक) अनेक प्रकार के अपने भावो को (द्रष्टा भाव से) जानता हुआ पर द्रव्य के निमित्त से उत्पन्न (अशुद्ध) पर्यायो मे कभी भी रूपान्तरित नही होता है, न (ही) (उनको) पकडता है और न (ही) (उनके साथ) आत्मसात् करता है।

37 निश्चय ही ज्ञानी अनन्त पुद्गल-कर्म के फल को (द्रष्टा भाव से) जानता हुआ पर द्रव्यो के निमित्त से उत्पन्न (फलरूप) पर्यायो मे कभी भी रूपान्तरित नही होता है, न ही (उनको) पकडता है और न ही (उनके साथ) आत्म-सात् करता है।

38 उसी प्रकार पुद्गल द्रव्य भी (जीवरूपी) पर द्रव्य की पर्यायो मे न ही रूपान्तरित होता है, न (ही) उनको पकडता है तथा न (ही) (उनके साथ) आत्मसात् करता है। (वह) (तो) अपनी (ही) पर्यायो मे रूपान्तरित होता है।

39 जीव के (राग-द्वेषात्मक) मनोभाव के कारण पुद्गल कर्मपने को प्राप्त करते है, उसी प्रकार पुद्गल कर्म के कारण जीव भी (राग-द्वेषात्मक रूप से) रूपान्तरित होता है।

40 जीव (आत्मा) (पुद्गल) कर्मरूप परिवर्तनो को कभी नही करता है, उसी प्रकार कर्म जीवरूप (चेतनरूप) परिणामो को (कभी नही करता है), परन्तु परस्पर निमित्त से दोनो के ही परिणमन को (तुम) जानो।

41 इस कारण से आत्मा (अपने मे) अपने निजी भावो के (उत्पन्न होने के) कारण ही (उनका) कर्त्ता है, परन्तु

42 णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥

43 ववहारस्स दु आदा पोंग्गलकम्म करेदि णेयविहं ।
तं चेव य वेदयदे पोग्गलकम्मं अणेयविहं ॥

44 जदि पोंग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा ।
दोकिरियावदिरित्तो पसज्जदे सो जिणावमदं ॥

45 जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स ।
कम्मत्त परिणमदे तम्हि सयं पोंग्गलं दव्व ॥

46 परमप्पाण कुव्व अप्पाण पि य परं करंतो सो ।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि ॥

47 परमप्पाणम कुव्व अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो ।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि ॥

पुद्गल कर्म के द्वारा उत्पन्न किए हुए किसी भी भाव का (आत्मा) कर्त्ता नहीं है।

42 निश्चयनय के (अनुसार) इस प्रकार (कहा गया है कि) आत्मा आत्मा (अपने भावो) को ही करता है, तथा आत्मा आत्मा (अपने भावो) को ही भोगता है, उसको ही (तुम) जानो।

43 किन्तु व्यवहारनय के (अनुसार) आत्मा अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म को करता है, तथा (वह) उस अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म को ही भोगता है।

44 यदि आत्मा इस पुद्गल कम को (भी) करता है (तथा) उसको ही भोगता है (तो) वह दो (विभिन्न) क्रियाओ* से अभिन्न (होता है)। (ऐसा सोचने से) (वह) जिन (के कथन) से विपरीत मत मे सलग्न होता है।

45 (अज्ञानी) आत्मा जिस भाव को उत्पन्न करता है, वह उस भाव का कर्त्ता होता है। उसके (कर्त्ता) होने पर पुद्गल द्रव्य अपने आप कर्मत्व को प्राप्त करता है।

46 पर (द्रव्य) को आत्मा मे ग्रहण करता हुआ तथा आत्मा को भी पर (द्रव्य) मे रखता हुआ जीव (मनुष्य) अज्ञानमय होता है। वह (अज्ञानी जीव ही) कर्मो का कर्त्ता (कहा जाता है)।

47 पर (द्रव्य) को आत्मा मे ग्रहण न करता हुआ तथा आत्मा को भी पर (द्रव्य) मे न रखता हुआ जीव (मनुष्य) ज्ञानमय होता है। वह (ज्ञानी जीव ही) कर्मों का अकर्त्ता (कहा जाता है)।

---

* 1 आत्मा के द्वारा शुद्ध भावो को करना व भोगना तथा 2 आत्मा के द्वारा पुद्गल कर्म को करना व भोगना।

48 एवं पराणि दव्वाणि अप्पय कुणदि मंदबुद्धीओ ।
अप्पाण अवि य पर करेदि अण्णाणभावेण ॥

49 एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो ।
एवं खलु जो जाणदि सो मुञ्चदि सव्वकत्तित्त ॥

50 ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरथादिदव्वाणि ।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥

51 जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता ॥

52 जीवो ण करेदि घड णेव पडं णेव सेसगे दव्वे ।
जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता ॥

53 जे पोंग्गलदव्वाण परिणामा होंति णाणआवरणा ।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥

48 इस प्रकार (मनुष्य) अज्ञान भाव के कारण पर द्रव्यो को आत्मा मे ग्रहण करता है और आत्मा को भी पर (द्रव्यो) मे रखता है। (सच है) मन्द बुद्धि (मनुष्य) (ऐसे ही होते हैं)।

49 इस (कारण) से ही वह आत्मा निश्चयनय के ज्ञाताओ द्वारा (अज्ञानी) कर्त्ता कहा गया है। इस प्रकार जो निश्चयपूर्वक जानता है वह सब (प्राकर से) कर्तृत्व को छोड देता है।

50. व्यवहार से ही (कहा गया है कि) आत्मा इस लोक मे घडा, कपडा, रथ आदि वस्तुओ को बनाता है, विविध क्रियाओ को (करता है), तथा (विविध) कर्मों को और (विविध) नोकर्मो को (उत्पन्न करता है)।

51 यदि वह (आत्मा) पर द्रव्यो को करे (तो) नियम से (वह) तद्रूप हो जायेगा। चूकि (वह) तद्रूप नही होता है, इसलिए वह उनका कर्त्ता नही है।

52 जीव (आत्मा) घडे को नही बनाता है, न ही कपडे को (बनाता है) और न ही शेष वस्तुओ को (बनाता है)। (जीव) (अपने) योग और उपयोग के कारण तथा (उनका ही) उत्पन्न करनेवाला होने के कारण उनका ही कर्त्ता होता है।

53 जो ज्ञान के आवरण (हैं), (वे) पुद्गल द्रव्यो के रूपान्तरण होते हैं। उनको आत्मा उत्पन्न नही करता है। (ऐसा) जो जानता है, वह ज्ञानी होता है।

54 ज भाव सुहमसुह करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता ।
त तस्स होदि कम्म सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥

55 जो जम्हि गुणो दव्वे सो अण्णम्हि दु ण सकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसंकतो किह त परिणामए दव्व ॥

56 दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पेॉग्गलमयम्हि कम्मम्हि ।
त उहयमकुव्वतो तम्हि कह तस्स सो कत्ता ॥

57 जीवम्हि हेदुभूदे वधस्स दु पस्सिदूण परिणामं ।
जीवेण कद कम्म भण्णदि उवयारमेत्तेण ॥

58 जोधेहि कदे जुद्धे रायेण कद त्ति जम्पदे लोगो ।
तह ववहारेण कद णाणावरणादि जीवेण ॥

59 उप्पादेदि करेदि य वधदि परिणामएदि गिण्हदि य ।
आदा पेॉग्गलदव्व ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥

54 (अज्ञानी) आत्मा जिस शुभ-अशुभ भाव को करता है, वह उसका निस्सदेह कर्त्ता होता है, वह (भाव) उसका कर्म होता है, (तथा) वह आत्मा ही उसका भोक्ता होता है।

55 जो गुण जिस द्रव्य मे (होता है), वह निश्चय ही अन्य द्रव्य मे प्रवेश नही करता है, (जब) वह (गुण) अन्य (द्रव्य) मे प्रविष्ट नही हुआ है, (तो) किस प्रकार उस (अन्य) द्रव्य को परिणमन करायेगा ?

56 आत्मा पुद्गलमय कर्म मे (स्वय के) द्रव्य और गुण को सर्वथा उत्पन्न नही करता है, (इसलिए) उन दोनो को उसमे पुद्गल कर्म मे) उत्पन्न न करता हुआ, वह उसका (पुद्गल कर्म का) कर्त्ता कैसे होगा ?

57 जीव का निमित्त बना हुआ होने पर (कर्म)-बध के फल को देख कर, जीव के द्वारा कर्म किया गया है, (ऐसा) उपचार मात्र से (व्यवहार से) कहा जाता है।

58 योद्धाओ द्वारा युद्ध किया जाने पर, राजा के द्वारा (युद्ध किया गया है) इस प्रकार लोक कहता है। उसी प्रकार व्यवहार से (कहा जाता है कि) जीव के द्वारा ज्ञानावरणादि (कर्म) किया गया है।

59 व्यवहारनय का (यह) कथन (है कि) आत्मा पुद्गल द्रव्य को उत्पन्न करता है, (उसको) परिणमन कराता है, ग्रहण करता है और बाँधता है।

60 जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो त्ति आलविदो ।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥

61 जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥

62 अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि ।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि ॥

63 णाणमया भावादो णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥

64 अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥

65 कणयमया भावादो जायंते कुंडलादयो भावा ।
अयमयया भावादो जह जायते दु कडयादी ॥

66 अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥

60 जैसे राजा व्यवहार के कारण (जनता मे) दोष और गुणो को उत्पन्न करने वाला कहा गया है, वैसे ही जीव (भी) व्यवहार के कारण (पुद्गल) द्रव्य और (उसके) गुणो को उत्पन्न करने वाला कहा गया है।

61. आत्मा जिस भाव को (अपने मे) उत्पन्न करता है, वह उस (भाव) कर्म का कर्त्ता होता है। ज्ञानी का (यह भाव) ज्ञानमय (होता है) और अज्ञानी का (यह भाव) अज्ञानमय होता है।

62 (चूंकि) अज्ञानी के अज्ञानमय भाव (होता है) इसलिए (वह) कर्मों को ग्रहण करता है, परन्तु ज्ञानी के ज्ञानमय (भाव) (होता है), इसलिए (वह) कर्मों को ग्रहण नही करता है।

63 चूँकि ज्ञानमय भाव से ज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होता है, इसलिए ज्ञानी के सब भाव ही ज्ञानमय (होते हैं)।

64 चूँकि अज्ञानमय भाव से अज्ञान (मय) भाव ही उत्पन्न होता है, इसलिए अज्ञानी के अज्ञानमय भाव (होते हैं)।

65. जैसे कनकमय वस्तु से कुण्डल आदि वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं और लोहमय वस्तु से कडे आदि उत्पन्न होते हैं,

66 वैसे ही अज्ञानी के अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होते हैं तथा ज्ञानी के सभी भाव ज्ञानमय होते हैं।

67 जीवे कम्म वद्ध पुट्ठ चेदि ववहारणयभणिद ।
सुद्धणयस्स दु जीवे अवद्धपुट्ठ हवदि कम्मं ॥

68 कम्मं बद्धमवद्ध जीवे एद तु जाण णयपक्खं ।
णयपक्खातिक्कतो भण्णदि जो सो समयसारो ॥

69 दोॅण्ह वि णयाण भणिद जाणदि णवरि तु समयपडिवद्धो ।
ण दु णयपक्ख गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो ॥

70 सम्मद्दसणणाण एसो लहदि त्ति णवरि ववदेस ।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥

71 कम्मसुहं कुसील सुहकम्म चावि जाणह सुसील ।
किह त होदि सुसील ज संसारं पवेसेदि ॥

72 सोवण्णिय पि णियल वधदि कालायसं पि जह पुरिस ।
वधदि एव जीव सुहमसुह वा कदं कम्म ॥

67 जीव के द्वारा कर्म बाँधा हुआ (है) और पकडा हुआ (है) इस प्रकार (यह) व्यवहारनय द्वारा कहा गया है, किन्तु शुद्धनय के (अनुसार) जीव के द्वारा कर्म न बाँधा हुआ (और) न पकडा हुआ होता है।

68 जीव के द्वारा कर्म बाँधा गया (है) और नही बाँधा गया (है)-इसको तो (तुम) नय की दृष्टि जानो, किन्तु जो नय की दृष्टि से अतीत (है) वह समयसार (शुद्ध आत्मा) कहा गया (है)।

69 आत्मा मे स्थिर (व्यक्ति) तो दोनो ही नयो के कथन को केवल जानता है। वह थोडो भी नय-दृष्टि को ग्रहण नही करता है। (इस तरह से) (वह) नय-दृष्टि से रहित होता है।

70 जो सब नय-दृष्टि से रहित कहा गया है, वह समयसार है। केवल यह (समयसार हो) सम्यक्दर्शन-ज्ञान इस प्रकार नाम को प्राप्त करता है।

71 अशुभ कर्म (क्रिया) बुरी प्रकृतिवाली (अनुचित) और शुभ कर्म (क्रिया) अच्छी प्रकृतिवाली (उचित) (होती है)। (ऐसा) तुम (सब) समझो। (किन्तु) (आश्चर्य !) जो (क्रिया) ससार (मानसिक तनाव) मे प्रवेश कराती है, वह अच्छी प्रकृतिवाली (उचित) कैसे रहती है ?

72 जैसे काले लोहे से बनी हुई बेडी व्यक्ति को बाँधती है और सोने की (बेडी) भी (व्यक्ति को) (बाँधती है), वैसे ही (जीव के द्वारा) किया हुआ (मानसिक तनावात्मक) शुभ-अशुभ कर्म भी जीव को बाँधता है।

73 तम्हा दु कुसीलेहि य राग मा काहि मा व संसग्गि ।
साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गिरागेण ॥

74 जह णाम को वि पुरिसो कुच्छियसील जणं वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गि रागकरणं च ॥
75 एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णादुं ।
वज्जंति परिहरंति य तं संसग्गि सहावरदा ॥

76 रत्तो बंधदि कम्मं मुञ्चदि जीवो विरागसंपण्णो ।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥

77 परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥

78 परमट्ठम्मि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारयदि ।
तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वण्हू ॥

73 इसलिए तो (दोनो) कुशीलो (मानसिक तनाव उत्पन्न करनेवाले कर्मो) के साथ बिल्कुल राग मत करो और (उनके साथ) सम्पर्क (भी) मत (रक्खो), क्योंकि (आत्मा का) स्वतन्त्र (स्वभाव) कुशीलो के साथ सम्पर्क और (उनके साथ) राग से व्यर्थ (हो जाता है)।

74 जैसे कोई व्यक्ति निन्दित आचरणवाले मनुष्य को जानकर
75 उसके साथ ससर्ग को और राग करने को छोड देता है, वैसा ही (पुद्गल)–कर्म का स्वभाव (समझा गया है)। उसकी निन्दित व्यवहार-प्रकृति को निश्चय ही जानकर स्वभाव मे लीन (व्यक्ति) उसके साथ को छोड देते हैं और (उसके साथ) (राग-क्रिया को) (भी) तज देते हैं।

76 आसक्त (जीव) कर्मो को बाँधता है, अनासक्ति से युक्त जीव (कर्मो को) छोड देता है। यह जिन-उपदेश है। इसलिए कर्मों मे आसक्त मत होवो।

77 जो शुद्ध आत्मा (है), (वह) निश्चय ही वास्तविकता है। (ऐसी) (आत्मा) (ही) पूर्ण रागद्वेषरहित, मुनि और ज्ञानी (कही जाती है)। उस वास्तविकता मे ठहरे हुए मुनि (ज्ञानी) परम शान्ति प्राप्त करते हैं।

78. जो (व्यक्ति) शुद्ध आत्मा पर (तो) निर्भर नही है, किन्तु (वह) (वाह्य) तप और व्रत धारण करता है। उस (धारण करने को) केवलज्ञानी अबोध तप और अबोध व्रत कहते हैं।

79 वदणियमाणि धरता सीलाणि तहा तव च कुव्वता ।
परमट्ठवाहिरा जे णिव्वाण ते ण विदति ॥

80 परमट्ठवाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छति ।
ससारगमणहेदु वि मोॅक्खहेदु अयाणता ॥

81 जीवादीसद्दहण सम्मत्त तेसिमधिगमो णाण ।
रागादीपरिहरण चरण एसो दु मोॅक्खपहो ॥

82 मोॅत्तूण णिच्छयट्ठ ववहारेण विदुसा पवट्ठति ।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ होदि ॥

83 वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणाच्छण्णो ।
मिच्छत्तमलोच्छण्ण तह सम्मत्त खु णादव्व ॥

84 वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणाच्छण्णो ।
अण्णाणमलोच्छण्ण तह णाणं होदि णादव्व ॥

79 व्रत और नियमो को धारण करते हुए तथा शीलो और तप का पालन करते हुए जो (व्यक्ति) परमार्थ (शुद्ध आत्म-तत्व) से अपरिचित (हैं) वे परम शान्ति को प्राप्त नही करते हैं।

80 जो (व्यक्ति) शुद्ध आत्मा मे अपरिचित (हैं), वे अज्ञान से ससार-गमन (मानसिक तनाव) के हेतु पुण्य को चाहते है और मोक्ष (तनाव-मुक्तता/स्वतन्त्रता/समता) के हेतु को न समझते हुए (जीते रहते हैं)।

81 जीवादि मे श्रद्धान सम्यक्त्व (है), उनका (ही) ज्ञान (सम्यक्) ज्ञान (है), (तथा) रागदि का त्याग (सम्यक्) चारित्र (है)। यह ही शान्ति का पथ है।

82 विद्वान (लौकिक विद्याओ मे निपुण) (व्यक्ति) निश्चय की सार्थकता को छोडकर व्यवहार मे प्रवृत्ति करते है। (सच तो यह है कि) परमार्थ का अभ्यास करनेवाले योगियो के ही कर्मो का क्षय होता है।

83 जिस प्रकार मैल के घने सयोग से ढकी हुई वस्त्र की सफेद अवस्था अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व-(मूर्च्छा) रूपी मैल से लोप किया गया सम्यक्त्व (जागृति) (अदृश्य हो जाता है)। (यह) निश्चय ही समझा जाना चाहिए।

84 जिस प्रकार मैल के घने सयोग से ढकी हुई वस्त्र की सफेद अवस्था अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार अज्ञानरूपी मैल से लोप किया गया ज्ञान (अदृश्य हो जाता है)। (यह) समझा जाना चाहिए।

85 वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणाच्छण्णो ।
कस्सायमलोच्छण्ण तह चारित्त पि णादव्व ॥

86 सो सव्वणाणदरिसी कम्मरयेण णिएणावच्छण्णो ।
ससारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्व ॥

87 णत्थि दु आसववधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
सते पुव्वणिवद्धे जाणदि सो ते अवधतो ॥

88 भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो होदि ।
रागादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि ॥

89 पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फलं बज्झदे पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिदे ण पुणोदयमुवेदि ॥

85 जिस प्रकार मैल के घने सयोग से ढकी हुई वस्त्र की सफेद अवस्था अदृश्य हो जाती है, उसी प्रकार कषाय के मैल से लोप किया गया (स्वरूपाचरण) चारित्र (अदृश्य हो जाता है) । (यह) समझा जाना चाहिए ।

86 वह (आत्मा) पूर्ण ज्ञान से देखने वाला है । (फिर भी खेद है कि) (वह) अपने द्वारा (अर्जित) कर्मरूपी रज से ही आच्छादित है (तथा) (उसके द्वारा) ससार (मानसिक तनाव) प्राप्त किया गया (है), (इसलिए) (वह) (अब) किसी भी (पदार्थ) को पूर्ण रूप से नही जानता है ।

87 सम्यग्दृष्टि के (जीवन मे) आश्रव (कर्म/नये मानसिक तनाव की उत्पत्ति) का नियन्त्रण हो जाता है । इसलिए उसके आश्रव से उत्पन्न बध (अशान्ति) नही होता है । वह उनको (नवीन कर्मो को) न बाँधता हुआ (जीता है) । वह पूर्व मे बाँधे हुए विद्यमान (कर्मो) को केवल (दृष्टा-भाव से) जानता है ।

88 जीव के द्वारा किया हुआ रागादियुक्त भाव ही कर्म-बन्ध करनेवाला होता है, (किन्तु) रागादि से रहित (भाव) कर्म-बन्ध करनेवाला नही (होता है) । (वह) (तो) केवल ज्ञायक (होता है) ।

89 पक्के फल के गिरे हुए होने पर जैसे (वह) फल फिर से डठल पर नही बाँधा जाता है, (उसी प्रकार) जीव के कर्म-भाव के गिरे हुए होने पर (जीव के कर्म) फिर से उदय को प्राप्त नही होते हैं ।

90 रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥

91 उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो ।
कोहे कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥

92 एद तु अविवरीद णाण जइया दु होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ॥

93 जह कणयमग्गितविय पि कणयसहाव ण त परिच्चयदि ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्त ॥

94 एव जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि रागमेवादं ।
अण्णाणतमोच्छण्ण आदसहावं अयाणतो ॥

95 सुद्ध तु वियातो विसुद्धमेवप्पय लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्ध असुद्धमेवप्पय लहदि ॥

90 सम्यग्दृष्टि के जीवन मे (नये) राग-द्वेष (आसक्ति) और मोह (मूर्च्छा) नही (होते हैं)। इसलिए (उसके) आश्रव (नये मानसिक तनावो की उत्पत्ति) (नही होता है)। आश्रव को (उत्पन्न करनेवाले) मनोभाव के बिना प्रत्यय (सत्ता मे विद्यमान कर्म) (आश्रव का) हेतु नही होते हैं।

91 (शुद्ध) ज्ञानात्मक चेतना (शुद्ध) ज्ञानात्मक चेतना मे ही (रहती है)। क्रोधादि (कषायो) मे किंचित भी ज्ञानात्मक चेतना (नही रहती है)। क्रोध क्रोध मे ही (रहता है)। इसलिए ज्ञानात्मक चेतना मे क्रोध बिलकुल ही नही रहता है।

92 जिस समय व्यक्ति के (जीवन मे) यह सम्यक् ज्ञान सचमुच उत्पन्न होता है, उस समय ज्ञान (समत्व) के द्वारा शुद्ध हुआ व्यक्ति कोई भी (शुभ-अशुभ) भाव उत्पन्न नही करता है।

93 जैसे आग मे तपाया हुआ सोना भी (अपने) कनक–स्वभाव को नही छोडता हैं, वैसे ही कर्म के उदय से तपाया हुआ ज्ञानी भी (अपने) ज्ञानीपन को नही छोडता है।

94 इस प्रकार ज्ञानी समझता है। (किन्तु) अज्ञानी अज्ञान-रूपी अधकार से लोप किए गए आत्म-स्वभाव को न जानता हुआ राग और आत्मा को (एक) ही मानता है।

95 शुद्ध (आत्मा) को जानता हुआ व्यक्ति शुद्ध आत्मा को प्राप्त करता है तथा अशुद्ध (आत्मा) को जानता हुआ (व्यक्ति) अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है।

96 अप्पाणमप्पणा रु धिदूण दोपुण्णपावजोगेसु ।
दंसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ॥

97 जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणा अप्पा ।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥

98 अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमइओ अणण्णमओ ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥

99 जह विसमुवभुञ्जंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि ।
पोंग्गलकम्मस्सुदयं तह भुञ्जदि णेव बज्झदे णाणी ॥

100 सेवंतो वि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो को वि ।
पगरणचेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होदि ॥

96 जो व्यक्ति आत्मा को आत्मा के द्वारा शुभ-अशुभ दो
97 क्रियाओ से रोककर दर्शन-ज्ञान मे ठहरा हुआ (है), और
98 (जो)अन्य मे इच्छा से विरत (होता है), तथा (जो) समस्त आसक्ति से रहित (रहता है), (जो) आत्मा के द्वारा आत्मा का ध्यान करता है तथा अनुपमता (शुद्ध आत्मा) का चिन्तन करता है, किन्तु कर्म और नोकर्म का कभी भी नही, जो दर्शन-ज्ञान से ओतप्रोत (तथा) अनुपम (स्वभाव) से युक्त (होता है), वह (ही) (व्यक्ति) आत्मा का ध्यान करता हुआ कर्मों से रहित आत्मा को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

99 जैसे वैद्य (आयुर्वेद से सबधित) पुरुष (जिसके द्वारा) विष खाया जाता हुआ (है), (विष-नाशक प्रक्रिया करने के कारण) मरण को प्राप्त नही होता है, वैसे ही (जो) ज्ञानी पुद्गल कर्म के उदय को (अनासक्तिपूर्वक) भोगता है (वह) (कर्मों से) नही बाँधा जाता है।

100 (सुखो के लिए वस्तुओ को) उपयोग मे लाते हुए भी (अनासक्ति के कारण) कोई (व्यक्ति) (तो) (उन पर) आश्रित नही होता है (और परम शान्ति प्राप्त कर लेता है), (किन्तु) (उनको) उपयोग मे न लाते हुए भी (कोई) (व्यक्ति) (आसक्ति के कारण) (उन पर) आश्रित (रहता है) (और) (परम शान्ति प्राप्त नही कर पाता है)। (ठीक ही है) किसी के लिए (किए गए) श्रेष्ठ कार्य के प्रयास के कारण भी (आसक्ति के कारण) वह (कोई) (व्यक्ति) (उस) श्रेष्ठ कार्य से (दृढ रूप से) सबधित नही होता है। (अत. कहा जा सकता है कि आसक्ति के कारण ही वस्तुओ से सबध जुडता है, जीव के कर्म-बन्धन होता है और उसमे अशान्ति पैदा होती है)।

101 उदयविवागो विविहो कम्माण वण्णिदो जिणवरेहिं ।
ण हु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमेक्को ॥

102 एव सम्मादिट्ठी अप्पाण मुणदि जाणगसहाव ।
उदय कम्मविवाग च मुयदि तच्च वियाणंतो ॥

103 परमाणुमेत्तय पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स ।
ण वि सो जाणदि अप्पाणय तु सव्वागमधरो वि ॥

104 अप्पाणमयाणंतो अणप्पय चावि सो अयाणतो ।
किह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥

105 णाणगुणेण विहीणा एद तु पद बहू वि ण लहंति ।
त गिण्ह णियदमेद जदि इच्छसि कम्मपरिमोॅक्खं ॥

106 एदम्हि रदो णिच्चं सतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि ।
एदेण होहि तित्तो होहिदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥

107 मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेॅज्ज ।
णादेव अह जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झं ॥

101 जितेन्द्रियो द्वारा कर्मों के उदय का अनेक प्रकार का फल बताया गया (है)। वे निश्चय ही मेरे स्वभाव नही (हैं)। मैं तो केवल ज्ञातक सत्ता (हूँ)।

102 इस प्रकार सम्यग्दृष्टि (व्यक्ति) आत्मा को (और उसके) ज्ञायक स्वभाव को जानता है, और (इसलिए) (वह) (आत्म)-तत्व को जानता हुआ कर्म-विपाक (और उसके) उदय को त्याग देता है।

103 निस्सदेह जिसके रागादि (भावो) का अश मात्र भी विद्य-मान होता है, (वह) (यदि) सर्व आगम का धारक भी (है), तो भी (वह) आत्मा को नही जानता हैं।

104 (यदि) वह आत्मा को न जानता हुआ तथा अनात्मा को भी न जानता हुआ (है), (तो) (इस तरह से) जीव और अजीव को न जानता हुआ, सम्यग्दृष्टि कैसे होगा ?

105 अत ज्ञान-गुण से रहित होने के कारण अत्यधिक (व्यक्ति) इस ज्ञान पद को प्राप्त नही करते हैं। इसलिए यदि (तुम) कर्म से छुटकारा चाहते हो, (तो) इस स्थिर (ज्ञान) को ग्रहण करो।

106 इसमे (ही) (तू) सदा सलग्न (रह), इसमे (ही) सदा सतुष्ट हो, (और) इससे (ही) (तू) तृप्त हो, (ऐसा करने से) तुझे उत्तम सुख होगा।

107 यदि परिग्रह मेरा (है), तब (तो) मैं अजीवता को ही प्राप्त हो जाऊँगा। चूकि मै ज्ञाता ही (हूँ), इसलिए परिग्रह मेरा नही है।

108 छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलय ।
जम्हा तम्हा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झ ॥

109 अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥

110 अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥

111 एमादिए दु विविहे सव्वे भावे य णेच्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालंबो दु सव्वत्थ ॥

112 णाणी रागप्पजहो हि सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पदि रजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥

108 (मेरी कहलाने वाली वस्तु) (किसी के द्वारा) छिन्न-भिन्न कर दी जाए, तोड दी जाए अथवा ले जाई जावे अथवा वह सर्वनाश को प्राप्त हो जाए या किसी कारण से (मेरे से) दूर चली जाए, तो भी (कोई वात नही है), (क्योकि) (कोई भी) परिग्रह (वस्तुत) मेरा (नही है)।

109 इच्छारहित व्यक्ति परिग्रहरहित कहा गया (है)। इसलिए (ऐसा) ज्ञानी धर्म (शुभ भाव/शुभ मानसिक तनाव) को भी नही चाहता है। वह परिग्रहरहित (व्यक्ति) तो (शुभ भाव/शुभ मानसिक तनाव का) ज्ञायक होता है।

110 इच्छारहित (व्यक्ति) परिग्रहरहित कहा गया (है)। इसलिए (ऐसा) ज्ञानी अधर्म (अशुभ भाव/अशुभ मानसिक तनाव) को भी नही चाहता है। वह परिग्रहरहित (व्यक्ति) अधर्म का ज्ञायक होता है।

111 इस प्रकार नाना प्रकार की समस्त जीवनोपयोगी वस्तुओ को ज्ञानी नही चाहता है। वह हर समय (पर के) आश्रय-रहित (होता है)। (वह) स्वशासित (रहता है), तथा ज्ञायक सत्तामात्र वना रहता है।

112 निश्चय ही ज्ञानी सब वस्तुओ मे राग का त्यागी (होता है)। अत कर्म के मध्य मे फसा हुआ भी (कर्मरूपी) रज के द्वारा मलिन नही किया जाता है, जिस प्रकार कनक कीचड के मध्य मे (पडा हुआ) (मलिन नही किया जाता है)।

113 अण्णाणी पुण रत्तो हि सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
लिप्पदि कम्मरयेण दु कद्दममज्झे जहा लोह ॥

114 भुञ्जंतस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
संखस्स सेदभावो ण वि सक्कदि किण्हगो कादु ॥

115 तह णाणिस्स दु विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिए दव्वे ।
भुञ्जंतस्स वि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदु ॥

116 जइया स एव संखो सेदसहावं सयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥

117 तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं सयं पजहिदूण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥

118 सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥

113 और निस्सदह अज्ञानी सब वस्तुओ मे आसक्त (होता है)। अत कर्म के मध्य मे फँसा हुआ कर्मरूपी रज से मलिन किया जाता है, जिस प्रकार कीचड मे (पडा हुआ) लोहा (मलिन किया जाता है)।

114. नाना प्रकार की सचित्त, अचित्त और मिश्रित वस्तुओ को खाते हुए भी शख की श्वेत पर्याय काली (पर्याय) कभी भी नही की जा सकती है।

115. उसी प्रकार अनेक प्रकार की सचित्त, अचित्त और मिश्रित वस्तुओ को भोगते हुए ज्ञानी का भी ज्ञान अज्ञान मे बदलने के लिए सभव नही किया गया है।

116 जब वह ही शख श्वेत पर्याय को स्वय (ही) छोडकर कृष्ण पर्याय को प्राप्त करता है, तब (वह) (ही) शुक्लत्व को छोड देता है।

117 निश्चय ही उसी प्रकार ज्ञानी भी जब ज्ञान-स्वभाव को स्वय ही छोडकर अज्ञान के द्वारा परिवर्तित (होता है), तब अज्ञान भाव को प्राप्त हो जाता है।

118. सम्यग्दृष्टि जीव (अध्यात्म मे) शकारहित होते हैं, इसलिए (वे) निर्भय (होते हैं), चूकि (सम्यग्दृष्टि जीव) सात* (प्रकार के) भयो से मुक्त (होते है), इसलिए निश्चय ही (वे) (अध्यात्म मे) शका-रहित (होते हैं)।

---

* लोक-भय, परलोक-भय, अरक्षा भय, अगुप्ति-भय (सयम हीन होने का भय), मृत्यु-भय, वेदना-भय, और अकस्मात-भय।

119 जो दु ण करेदि कखं कम्मफले तह य सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥

120 जो ण करेदि दुगुञ्छं चेदा सव्वेसिमेव धम्माण ।
सो खलु णिव्विदिगिञ्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥

121 जो हवदि असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥

122 जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माण ।
सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥

123 उम्मग्ग गच्छत सग पि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेदण्वो ॥

124 जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्ह् साहूण मोॅक्खमग्गम्मि ।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥

119 जो किसी भी शुभ मनोवृत्ति से (लौकिक फल प्राप्ति की) चाहना नही करता है तथा (उनसे उत्पन्न) कर्म-फलो को भी (नही चाहता है), वह व्यक्ति नि काक्ष सम्यग्दृष्टि समझा जाना चाहिए।

120 जो व्यक्ति किसी भी (सेवा) कर्तव्य के प्रति घृणा नही करता है, वह निश्चय ही निर्विचिकित्स सम्यग्दृष्टि समझा जाना चाहिए।

121 जो व्यक्ति सभी (शुभ) मनोवृत्तियो मे मूढतारहित (होता है) तथा (उनमे) उचित दृष्टिवाला होता है, वह निश्चय ही अमूढदृष्टि सम्यग्दृष्टि समझा जाना चाहिए।

122 जो (व्यक्ति) शुद्धात्मा की श्रद्धा से युक्त (है) और (अपने द्वारा किए गए) (दूसरो की) सभी भलाई के कार्यों को ढकनेवाला है, वह उपगूहनकारी सम्यग्दृष्टि समझा जाना चाहिए।

123. जो मनुष्य उन्मार्ग मे जाते हुए स्वयं को सद्मार्ग मे स्थापित करता है, वह स्थितिकरण से युक्त सम्यग्दृष्टि समझा जाना चाहिए।

124 जो (मनुष्य) मोक्ष (परम शान्ति) के मार्ग मे स्थित तीन* (प्रकार के) साधुओ के प्रति वात्सल्यता को प्रकट करता है, वह वात्सल्य भाव युक्त सम्यग्दृष्टि समझा जाना चाहिए।

---

* आचार्य, उपाध्याय, साधु।

125 विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥

126 जह णाम को वि पुरिसो णेहब्भत्तो दु रेणुबहुलम्मि ।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेदि सत्थेहि वायामं ॥
127 छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताण करेदि दव्वाणमुवघादं ॥

128 उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतेज्ज हु किं पच्चयगो दु रयबंधो ॥

129 जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहि सेसाहिं ॥

130 एवं मिच्छादिट्ठी वट्टंतो बहुविहासु चिट्ठासु ।
रायादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रयेण ॥

125 जो मनुष्य अध्यात्म–ज्ञान रूपी रथ पर बैठा हुआ सकल्प-रूपी नायक के द्वारा (विभिन्न) मार्गों (स्थानो) पर भ्रमण करता है, वह अरहत (समतादर्शी) द्वारा प्रतिपादित ज्ञान की महिमा करनेवाला सम्यग्दृष्टि समझा जाना चाहिए ।

126 जैसे कोई व्यक्ति (शरीर पर) चिकनाई से युक्त हुआ बहुत
127. धूल वाले स्थान पर रहकर (नाना प्रकार के) शस्त्रो द्वारा चेष्टा करता है तथा (उनके द्वारा) ताड, पहाडी ताड, केले, बाँस और खजूर के वृक्षो को छेदता है तथा भेदता है, सचित्त और अचित वस्तुओ का नाश करता है ।

128 नाना प्रकार के साधनो से (वृक्षो का) नाश करते हुए उसके निश्चय ही धूल का सयोग (होता है) । (इसका) क्या आधार है ? (इस) (पर) निश्चय-दृष्टि से हमे विचार करना चाहिए ।

129 जो उस मनुष्य पर चिकनाई का अस्तित्व है, उस कारण से उम (मनुष्य) के वह धूल-सयोग (होता है) । यह निश्चय-दृष्टि से समझा जाना चाहिए । अन्य सभी काय–चेष्टाओ से (धूल–सयोग) नही (होता है) ।

130 इस प्रकार मूच्छित (व्यक्ति) बहुत प्रकार की चेष्टाओ मे प्रवृत्ति करता हुआ चेतना मे रागादि को करता हुआ (कर्म)–धूल के द्वारा मलिन किया जाता है ।

131 एव सम्मादिट्ठी वट्टतो बहुविहेसु जोगेसु ।
अकरंतो उवओगे रागादी ण लिप्पदि रयेण ॥

132 अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेहि मा व मारेहि ।
एसो बंधसमासो जीवाण णिच्छयणयस्स ॥

133 एवमलिये अदत्ते अबभचेरे परिग्गहे चेव ।
कीरदि अज्झवसाणं ज तेण दु वज्झदे पाव ।

134 तह वि य सच्चे दत्ते बम्हे अपरिग्गहत्तणे चेव ।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु वज्झदे पुण्णं ॥

135 वत्थु पडुच्च त पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं ।
ण हि वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधो त्ति ॥

136 एव ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥

131 और जागृत (व्यक्ति) बहुत प्रकार की क्रियाओं मे प्रवृत्ति करता हुआ तथा चेतना मे रागादि को नही करता हुआ (कर्म/मानसिक तनावरूपी) धूल के द्वारा मलिन नही किया जाता है।

132 प्राणियो की हिंसा करो अथवा (उनकी) हिंसा न भी करो, (किन्तु) (हिंसा के) विचार से (ही) (कर्म)-बध (होता है)। निश्चयनय के (अनुसार) यह जीवो के कर्म-(बध) का सक्षेप है।

133 इस प्रकार असत्य मे, चोरी मे, अब्रह्मचर्य मे (तथा) परिग्रह मे जो (आसक्तिपूर्ण) विचार किया जाता है, उसके द्वारा ही पाप ग्रहण किया जाता है।

134 और उसी प्रकार ही सत्य मे, अचौर्य मे, ब्रह्मचर्य मे (तथा) अपरिग्रहता मे जो विचार किया जाता है, उसके द्वारा ही पुण्य ग्रहण किया जाता है।

135 फिर वस्तु को आश्रय करके निस्सदेह जीवो के वह (आसक्ति पूर्ण) विचार होता है, तो भी वास्तव मे वस्तु से बध नही (होता है)। अत (आसक्तिपूर्ण) विचार से ही बध (होता है)।

136 इस प्रकार निश्चयनय के द्वारा व्यवहारनय अस्वीकृत (है)। (ऐसा) (तुम) समझो। और फिर निश्चयनय के आश्रित ज्ञानी परम शान्ति प्राप्त करते है।

137 मोक्ख असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीयेंज्ज ।
पाठो ण करेदि गुण असद्दहंतस्स णाणं तु ॥

138 आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं ।
छज्जीवणिकं च तहा भणदि चरित्तं तु ववहारो ॥

139 ण वि रागदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा ।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं ॥

140 जह बंधे चिंततो बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं ।
तह बंधे चिंततो जीवो वि ण पावदि विमोक्खं ॥

141 जह बंधे छेत्तूण य बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं ।
तह बंधे छेत्तूण य जीवो संपावदि विमोक्खं ॥

142 बंधाणं च सहावं वियाणिदु अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि ॥

137 जो भी अनाध्यात्मवादी (परतन्त्रतावादी) जीव शुद्ध आत्मा पर अश्रद्धा करता हुआ अध्ययन करता है, तो (उस) (शुद्ध आत्म) ज्ञान पर अश्रद्धा करते हुए (जीव) के लिए (वह) अध्ययन (कोई) (आत्म-ज्ञान-रूपी) फल उत्पन्न नही करता है ।

138 आचाराग आदि (आगमो) मे (गति) ज्ञान समझा जाना चाहिए, और जोव आदि (तत्वो मे) (रुचि) दर्शन (सम्यग्दर्शन) (समझा जाना चाहिए)। छः जीव-समूह के प्रति (करुणा) चारित्र (समझा जाना चाहिए)। इस प्रकार व्यवहार कहता है।

139 ज्ञानी राग-द्वेष-मोह अथवा कषाय-भाव को कभी नही करता है। इसलिए मन के उन भावो का वह स्वय कर्ता नही हैं।

140 जैसे (कोई) वन्धन मे बँधा हुआ (उस) बधन की चिंता करते हुए (उससे) छुटकारा नही पाता है, उसी प्रकार जीव भी (कर्म)-बधन की चिंता करते हुए मुक्ति (शान्ति) प्राप्त नही करता है ।

141 जैसे (कोई) बधन से बधा हुआ (उस बधन को नष्ट करके (उससे) छुटकारा पाता है, वैसे ही (कर्म-बधन) को नष्ट करके जीव मुक्ति (परम शाति) प्राप्त करता है।

142 (कर्म)-बध के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जानकर जो (व्यक्ति) (कर्म)-बध से उदासीन हो जाता है, वह कर्मों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

143 जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहि णियदेहि ।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥

144 जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहि णियदेहि ।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो ॥

145 किह सो घेप्पदि अप्पा पण्णाए सो दु घेप्पदे अप्पा ।
जह पण्णाइ विहत्तो तह पण्णाएव घेत्तव्वो ॥

146 पण्णाए घेत्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ॥
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ॥

147 पण्णाए घेत्तव्वो जो दट्ठा सो अह तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ॥

148 पण्णाए घेत्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा ॥

143 प्रज्ञा के द्वारा विभक्त करन के कारण ही जीव तथा (कर्म)-वघ निश्चित स्व-लक्षणो द्वारा विभक्त कर दिए जाते है। (वे) विभक्त किए हुए पृथकता को प्राप्त (होते है)।

144 (जव) जीव तथा (कर्म)-वघ निश्चित स्व-लक्षणो द्वारा विभक्त कर दिये जाते हैं, (तव फिर) वघ नष्ट कर दिया जाना चाहिए और शुद्ध आत्मा ग्रहण की जानी चाहिए।

145 वह आत्मा कैसे ग्रहण किया जाता है ? वह आत्मा प्रज्ञा से ही ग्रहण किया जाता है। जैसे प्रज्ञा के द्वारा (आत्मा कर्म से) अलग किया हुआ (है), वैसे ही प्रज्ञा के द्वारा (आत्मा) ग्रहण (अनुभव) किया जाना चाहिए।

146 जो प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण किए जाने योग्य है, वह आत्मा निश्चय से मैं ही (हूँ)। अत जो अवशिष्ट वस्तुएँ हैं, वे मेरे से भिन्न समझी जानी चाहिए।

147. जो द्रष्टा (भाव) (है), वह निश्चय-दृष्टि से मै (हूँ)। (यह) प्रज्ञा के द्वारा ग्रहण किया जाना चाहिए। जो शेष भाव (हैं), वे मुझे से भिन्न हैं। इस प्रकार (ये भाव) समझे जाने चाहिए।

148 जो ज्ञाता (भाव) (है), वह निश्चय-दृष्टि से मैं (हूँ)। जो शेप भाव है, वे मुझ से भिन्न है। इस प्रकार (ये) (भाव) समझे जाने चाहिए।

149 अण्णाणी कम्मफल पयडिमहावट्ठिदो दु वेदेदि ।
णाणी पुण कम्मफलं जाणदि उदिद ण वेदेदि ॥

150 ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठु वि अज्झाइदूण सत्थाणि ।
गुडदुद्ध पि पिवता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥

151 णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मफलं वियाणादि ।
महुर कडुयं बहुविहमवेदगो तेण सो होदि ॥

152 ण वि कुव्वदि ण वि वेददि णाणी कम्माइ बहुप्पयाराइं ।
जाणदि पुण कम्मफल बंध पुण्ण च पाव च ॥

153 जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु ।
तम्हा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसएसु ॥

154 पासडिय लिंगाणि य गिहिलिंगाणि य बहुप्पयाराणि ।
घेत्तु वदति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गो त्ति ॥

149 अज्ञानी जड के स्वभाव मे स्थित हुआ कर्म के फल का ही अनुभव करता है किन्तु ज्ञानी कर्म के फल को जानता (ही) है, उदय मे आए हुए (कर्म) को (सुख-दु खरूप) अनुभव नही करता है ।

150. अनाध्यात्मवादी (परतन्त्रतावादी) आध्यात्मिक ग्रन्थो का भली प्रकार से अध्ययन करके भी (जड)-स्वभाव को नही छोडता है, (जैसे) सर्प गुड सहित दूध को पीते हुए भी विष-रहित नही होते हैं ।

151 विरक्ति को पूर्णत प्राप्त हुआ ज्ञानी कर्म के फल को (केवल) जानता है । इसलिए वह अनेक प्रकार के मधुर (सुख देनेवाले) (और) कडवे (दु ख देनेवाले) (कर्म के फल) को भोगनेवाला नही (होता है) ।

152 ज्ञानी (व्यक्ति) वहुत प्रकार के कर्मों को न ही करता है (और) न ही भोगता है, किन्तु (वह) (तो) कर्मों के फल को और (उनके) वन्ध को, पुण्य तथा पाप को (केवल) जानता (ही) है ।

153 जीव के जो कोई गुण (है), वे द्रव्यो मे निश्चय ही नही होते है । इसलिए सम्यग्दृष्टि के (इन्द्रिय)-विषय मे राग विल्कुल नही होता है ।

154 वहुत प्रकार के साधुओ के वेषो और गृहस्थो के वेषो को प्रत्यक्ष करके मूढ व्यक्ति इस प्रकार कहता है (कि) यह वेष मोक्ष (परम शान्ति/स्वतन्त्रता) का मार्ग है ।

155 ण दु होदि मोक्खमग्गो लिंग जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेवंते ॥

156 ण वि एस मोक्खमग्गो पासंडिय गिहिमयाणि लिंगाणि ।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥

157 तम्हा जहित्तु लिंगे सागारणगारियेहि वा गहिदे ।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुञ्ज मोक्खपहे ॥

158 मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि चेदयहि झाहि तं चेव ।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु ॥

159 पासंडिय लिंगेसु व गिहिलिंगेसु व बहुप्पयारेसु ।
कुव्वंति जे ममत्तं तेहि ण णादं समयसारं ॥

160 ववहारिओ पुण णओ दोण्णि वि लिंगाणि भणदि मोक्खपहो ।
णिच्छयणओ दु णेच्छदि मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥

155. (सच है कि) वेष निश्चय ही शान्ति का मार्ग नही होता है, क्योंकि देह की ममता-रहित अरिहत वेष (की भावना) को छोडकर सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की आराधना करते हैं।

156 साधु और गृहस्थ के लिए बने हुए (कई) वेष (होते हैं)। यह (कोई) भी मोक्ष (परम शान्ति/स्वतन्त्रता) का मार्ग नही है। अरिहत सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र-(इन तीनो) को शान्ति का मार्ग कहते हैं।

157. इसलिए गृहस्थो और साधुओ के द्वारा धारण किए हुए वेषो की बात को (मन से) त्याग कर (तुम) सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी अध्यात्म मार्ग मे निज को लगाओ।

158 (तू) मोक्ष-पथ (स्वतन्त्रता का पथ) मे आत्मा को स्थापित कर, उसको ही अनुभव कर, (तथा) (उसका ही) ध्यान कर, वहाँ ही (तू) सदा रह, (तू) अन्य द्रव्यो मे स्थिति मत कर।

159. बहुत प्रकार के साधु-वेषो मे तथा गृहस्थ-वेषो मे जो (लोग) ममत्व करते है, उनके द्वारा समयसार (आत्मा का सार) नही जाना गया है।

160. व्यवहार-सबधी नय दोनो ही वेषो को मोक्ष (स्वतन्त्रता) के मार्ग मे प्रतिपादित करता है, किन्तु निश्चयनय किसी भी वेष को मोक्ष (स्वतन्त्रता) के मार्ग मे स्वीकृति नही देता है।

संकेत सूची

(अ)	—अव्यय (इसका अर्थ =लगाकर लिखा गया है)
अक	—अकर्मक क्रिया
अनि	—अनियमित
आज्ञा	—आज्ञा
कर्म	—कर्मवाच्य
(क्रिविअ)	—क्रिया विशेषण अव्यय (इसका अर्थ =लगाकर लिखा गया है)
तुवि	—तुलनात्मक विशेषण
पु	—पुल्लिग
प्रे	—प्रेरणार्थक क्रिया
भकृ	—भविष्य कृदन्त
भवि	—भविष्यत्काल
भाव	—भाववाच्य
भू	—भूतकाल
भूकृ	—भूतकालिक कृदन्त
व	—वर्तमानकाल
वकृ	—वर्तमान कृदन्त
वि	—विशेषण
विधि	—विधि
विधिकृ	—विधि कृदन्त
स	—सर्वनाम
सकृ	—सम्बन्ध कृदन्त
सक	—सकर्मक क्रिया
सवि	—सर्वनाम विशेषण
स्त्री	—स्त्रीलिंग
हेकृ	—हेत्वर्थ कृदन्त
( )	—इस प्रकार के कोष्ठक मे मूल शब्द रक्खा गया है।

[( )+( )+( )]
इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर+ चिह्न किन्ही शब्दो मे संधि का द्योतक है। यहाँ अन्दर के कोष्ठको मे गाथा के शब्द ही रख दिये गये हैं।

[( )—( )—( )]
इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर '—' चिह्न समास का द्योतक है।

[[( )—( )...] वि]
जहाँ समस्त पद विशेषण का कार्य करता है, वहाँ इस प्रकार के कोष्ठक का प्रयोग किया गया है।

• जहाँ कोष्ठक के बाहर केवल सख्या (जैसे 1/1, 2/1 आदि) ही लिखी है, वहाँ कोष्ठक के अन्दर का शब्द 'सज्ञा' है ।

• जहाँ कर्मवाच्य, कृदन्त आदि प्राकृत के नियमानुसार नही बनें हैं, वहाँ कोष्ठक के बाहर 'अनि' भी लिखा गया है ।

1/1—प्रथमा/एकवचन
1/2—प्रथमा/बहुवचन
2/1—द्वितीया/एकवचन
2/2—द्वितीया/बहुवचन
3/1—तृतीया/एकवचन
3/2—तृतीया/बहुवचन
4/1—चतुर्थी/एकवचन
4/2—चतुर्थी/बहुवचन
5/1—पंचमी/एकवचन
5/2—पचमी/बहुवचन
6/1—षष्ठी/एकवचन
6/2—षष्ठी/बहुवचन
7/1—सप्तमी/एकवचन
7/2—सप्तमी/बहुवचन
8/1—सबोधन/एकवचन
8/2—सबोधन/बहुवचन

1/1 अक या सक—उत्तम पुरुष/एकवचन

1/2 अक या सक—उत्तम पुरुष/बहुवचन

2/1 अक या सक—मध्यम पुरुष/एकवचन

2/2 अक या सक—मध्यम पुरुष/बहुवचन

3/1 अक या सक—अन्य पुरुष/एकवचन

3/2 अक या सक—अन्य पुरुष/बहुवचन

व्याकरणिक विश्लेषण

1 सुदपरिचिदाणुभूदा [(सुद) + (परिचिद) + (अणुभूदा)] [(सुद) भूकृ अनि—(परिचिद) भूकृ अनि—(अणुभूद→अणुभूदा) भूकृ 1/1 अनि] सव्वस्स[1] (सव्व) 6/1 वि वि (अ)=निश्चय ही कामभोगबधकहा [(काम)—(भोग)—(बध[2])—(कहा) 1/1] एयत्तस्सुवलभो [(एयत्तस्स) + (उवलभो)] एयत्तस्स (एयत्त[2]) 6/1 उवलभो (उवलभ[2]) 1/1 णवरि (अ)=केवल ण (अ)=नही सुलहो (सुलह) 1/1 वि विहत्तस्स (विहत्त[2]) भूकृ 6/1 अनि

2 त (त) 2/1 सवि एयत्तविहत्त [(एयत्त)—(विहत्त) भूकृ 2/1 अनि] दाएहं[4] (दाअ)[3] भवि 1/1 सक अप्पणो (अप्प) 6/1 सविहवेण [(स) वि—(विहव) 3/1] जदि (अ)=यदि दाएज्ज (दाअ)[3] विधि 1/1 सक पमाण (पमाण) 1/1 चुक्केज्ज (चुक्क) विधि 1/1 अक छल (छल) 1/1 ण (अ)=नही घेत्तव्वं (घेत्तव्व) विधि 1/1 अनि ।

3 जह (अ)=जैसे ण वि (अ)=कभी नही सक्कमणज्जो [(सक्क) + (अणज्जो)] सक्क (सक्क) विधिकृ 1/1 अनि अणज्जो (अणज्ज) 1/1 वि अणज्जभासं[5] [(अणज्ज) वि—(भास) 2/1] विणा (अ)=विना दु (अ)=पाद पूर्ति गाहेदु (गाह) हेकृ तह (अ)

---

1 कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-134)

2 बध=निरूपण, एयत्त=अद्वितीयता, विहत्त=समतामयी, उवलभ=अनुभव

3 (दा+अ)—यहाँ 'दा' में विकल्प से 'अ' जोडा गया है ।

4 हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-170 तथा अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ, 264(11) ।

5 'विना' के साथ द्वितीया, तृतीया या पचमी विभक्ति का प्रयोग होता है ।

=वैसे ही ववहारेण[1] (ववहार) 3/1 विणा (अ)=विना परमत्थुवदेसणमसक्क [(परमत्थ) + (उवदेसण) + (असक्क)] [(परमत्थ)—(उवदेसण) 1/1] असक्क (असक्क) विधि कृ 1/1 अनि

4 ववहारोऽभूदत्थो [(ववहारो) + (अभूदत्थो)] ववहारो (ववहार) 1/1 अभूदत्थो (अभूदत्थ) 1/1 वि भूदत्थो (भूदत्थ) 1/1 वि देसिदो (देस) भूकृ 1/1 दु (अ)=ही सुद्धणओ [(सुद्ध) वि—(णअ) 1/1)] भूदत्थमस्सिदो [(भूदत्थ) + (अस्सिदो)] भूदत्थ[2] (भूदत्थ) 2/1 अस्सिदो (अस्सिद) 1/1 भूकृ अनि खलु (अ)=ही सम्मादिट्ठी (सम्मादिट्ठी) 1/1 वि हवदि (हव) व 3/1 अक जीवो (जीव) 1/1

5 सुद्धो (सुद्ध) 1/1 वि सुद्धादेसो [(सुद्ध) + (आदेस)] [(सुद्ध) वि—(आदेस) 1/1] णादव्वो (णा) विधि कृ 1/1 परमभावदरिसीहिं [(परम) वि— (भाव)—(दरिसि) 3/2 वि] ववहारदेसिदा [(ववहार)—(देस) भूकृ 1/2] पुण (अ)=और जे (ज) 1/2 सवि दु (अ)=ही अपरमे (अपरम) 7/1 वि ठिदा (ठिद) भूकृ 1/2 अनि भावे (भाव) 7/1

6 जो (ज) 1/1 सवि पस्सदि (पस्स) व 3/1 सक अप्पाण (अप्पाण) 2/1 अबद्धपुट्ठ [(अबद्ध) + (अपुट्ठ)] [(अबद्ध) भूकृ अनि — (अपुट्ठ) भूकृ 2/1 अनि] अणण्णय (अणण्ण) 2/1 वि स्वार्थिक 'य' प्रत्यय णियद (णियद) 2/1 वि अविसेसमसजुत्त [(अविसेस) + (असजुत्त)] अविसेस (अविसेस) 2/1 वि असजुत्त

1 (पीछे देखो 5)

2 कभी कभी सप्तमी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम–प्राकृत–व्याकरण 3–137) या 'अस्सिद' कर्म के साथ कर्तृवाच्य में प्रयुक्त होता है (आप्टे, सस्कृत–हिन्दी कोश)।

(असजुत्त) भूकृ 2/1 अनि त (त) 2/1 सवि सुद्धणय (सुद्धणय) 2/1 वियाणाहि[1] (वियाण) विधि 2/1 सक

7 जो (ज) 1/1 सवि पस्सदि (पस्स) व 3/1 सक अप्पाण (अप्पाण) 2/1 अवद्धपुट्ठ [(अबद्ध) + (अपुट्ठ)] [(अवद्ध) भूकृ अनि-(अपुट्ठ) भूकृ 2/1 अनि] अणण्णमविसेसं [(अणण्ण) + (अविसेस)]अणण्ण (अणण्ण) 2/1 वि अविसेस (अविसेस) 2/1वि अपदेससुत्तमज्झं [(अ–पदेस) + (अ–सुत्त) + (अ–मज्झं)] [(अ–पदेस) वि–(अ–सुत्त) वि–(अ–मज्झ) 1/1 वि] जिणसासण [(जिण)—(सासण) 2/1] सव्व (सव्व) 2/1 वि

8 जह (अ)=जैसे णाम (अ)=पाद पूर्ति को (क) 1/1 वि वि (अ)=भी पुरिसो (पुरिस) 1/1 रायाण (रायाण) 2/1 अनि जाणिदूण (जाण) सकृ सद्दहदि (सद्दह) व 3/1 सक तो (अ)=तब त (त) 2/1 सवि अणुचरदि (अणुचर) व 3/1 सक पुणो (अ) =और अत्थत्थीओ (अत्थत्थी) 1/1 वि 'अ' स्वार्थिक प्रत्यय पयत्तेण (क्रिविअ)=बडी सावधानीपूर्वक

9 एव (अ)=वैसे हि (अ)=ही जीवराया [(जीव)—(राय) 1/1] णादव्वो (णा) विधिकृ 1/1 तह य (अ)=तथा सद्दहेदव्वो (सद्दह) विधिकृ 1/1 अणुचरिदव्वो (अणुचर) विधिकृ 1/1 य (अ)=और पुणो (अ)=फिर सो (त) 1/1 वि चेव (अ)=ही दु (अ)=निस्सदेह मोॅक्खकामेण (मोॅक्खकाम) 3/1 वि.

10 अहमेव [(अह) + (एदं)] अहं (अम्ह) 1/1 स एद (एद) 1/1 सवि एदमहं [(एद) + (अहं)] एदं (एद) 1/1 सवि

---

1 आज्ञार्थक या विधि अर्थक प्रत्ययों के होने पर कभी कभी अन्त्यस्थ 'अ' के स्थान पर 'आ' की प्राप्ति हो जाती है। (हेम–प्राकृत–व्याकरण 3–158 वृत्ति)

अह (अम्ह) 1/1 स अहमेदस्सेव [(अहं)+(एदस्स)+(एव)] अह (अम्ह) 1/1 स एदस्स (एद) 4/1 स एव (अ)=ही होमि (हो) व 1/1 अक मम (अम्ह) 4/1 स एद (एद) 1/1 सवि अण्ण (अण्ण) 1/1 वि ज (ज) 1/1 सवि परदव्व [(पर) वि—(दव्व) 1/1] सच्चित्ताचित्तमिस्स [(सचित्त)+(अचित्त) +(मिस्स)] [(सचित्त) वि—(अचित्त)वि-(मिस्स) 1/1 वि] वा (अ)=भी.

11 आसि (अस) भू 3/1 अक मम (अम्ह) 6/1 स पुव्वमेद [(पुव्वं)+(एदं)] पुव्वं (अ)=पहले एद (एद) 1/1 सवि अहमेद [(अह)+(एद)] अह (अम्ह) 1/1 स एद (एद) 1/1 सवि चावि (अ)=भी पुव्वकालम्हि [(पुव्व) वि—(काल) 7/1] होहिदि (हो) भवि 3/1 अक पुणो (अ)=फिर वि (अ)=भी मज्झ (अम्ह) 4/1 स होस्सामि (हो) भवि 1/1 अक

12 एव (अ)=इस प्रकार से तु (अ)=ही असभूद (अ-स-भूद)2/1 वि आदवियप्प [(आद)—(वियप्प) 2/1] करेदि (कर) व 3/1 सक समूढो (स-मूढ) 1/1 वि भूदत्थ (भूदत्थ) 2/1 वि जाणतो (जाण) वकृ 1/1 ण (अ)=नहीं दु (अ)=और त (त) 2/1 सवि असमूढो (अ-स-मूढ) 1/1 वि

13 ववहारणओ (ववहारणअ) 1/1 भासदि (भास) व 3/1 सक जीवो (जीव) 1/1 देहो (देह) 1/1 य (अ)=और हवदि (हव) व 3/1 अक खलु (अ)=पाद-पूर्ति एक्को (एक्क) 1/1 वि ण (अ)=नहीं दु (अ)=परन्तु णिच्छयस्स (णिच्छय) 6/1 य (अ)=और कदावि (अ)=कभी एक्कट्ठो [(एक्क)—(अट्ठो)] [(एक्क) वि—(अट्ठ) 1/1]

14 त (त) 1/1 णिच्छये (णिच्छय) 7/1 ण (अ)=नहीं जुज्जदि[1] (जुज्जदि) कर्म व 3/1 सक अनि सरीरगुणा [(सरीर)—(गुण) 1/2] हि (अ)=क्योंकि होंति (हो) व 3/2 अक केवलिणो (केवलि) 6/1 केवलिगुणे [(केवलि)—(गुण) 2/2] थुणदि (थुण) व 3/1 सक जो (ज) 1/1 सवि सो (त) 1/1 सवि तच्च (क्रिविअ)=वास्तव मे केवलि (केवलि) 2/1

15 णयरम्मि[2] (णयर) 7/1 वण्णिदे[2] (वण्णिद) भूकृ 7/1 अनि जह (अ)=जैसे ण (अ)=नहीं वि (अ)=भी रण्णो (राय) 6/1 वण्णणा (वण्णणा) 1/2 कदा (कद) भूकृ 1/2 अनि होदि (हो) व 3/1 अक देहगुणे[1] [(देह)—(गुण) 7/1] थुव्वते[2] (थुव्वते) वकृ कर्म 7/1 अनि केवलिगुणा [(केवलि)-(गुण) 1/2] थुदा (थुद) भूकृ 1/2 अनि होंति (हो) व 3/2 अक

16 जो (ज) 1/1 सवि इंदिये (इंदिय) 2/2 जिणित्ता (जिण) सकृ णाणसहावाधिय [(णाण)+(सहाव)+(अधिय)] [(णाण)—(सहाव)—(अधिय) 2/1 वि] मुणदि (मुण) व 3/1 सक आद (आद) 2/1 त (त) 2/1 सवि खलु (अ)=ही जिदिंदिय [(जिद)+(इंदिय)] [[(जिद) भूकृ अनि—(इंदिय) 1/1] वि] ते (त) 1/2 सवि भणंति (भण) व 3/2 सक जे (ज) 1/2 सवि णिच्छिदा (णिच्छिद) 1/2 वि साहू (साहु) 1/2

1 जुज्जदि (कर्मवाच्य अनि) का प्रयोग सप्तमी या षष्ठी के साथ 'उपयुक्त होना' अर्थ में होता है। आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोष (युज्→कर्म युज्यते)। जुञ्जदि' पाठ ठीक प्रतीत नहीं होता है। देखें समयसार कुन्दकुन्द भारती के अन्तर्गत (स-प पन्नालाल साहित्याचार्य)

2 एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया होने पर पहली क्रिया मे सप्तमी होती है। कर्मवाच्य में कर्म और कृदन्त में सप्तमी होगी।

17 जह (अ)=जैसे णाम (अ)=पाद पूर्ति को (क) 1/1 सवि वि (अ)=भी पुरिसो (पुरिस) 1/1 परदव्वमिण [(पर)+(दव्वं)+(इण)] [(पर) वि-(दव्व) 1/1] इण (इम) 1/1 सवि त्ति (अ)=इस प्रकार जाणिदु (जाण) सकृ मुयदि (मुय) व 3/1 सक तह (अ)=वैसे ही सव्वे (सव्व) 2/2 परभावे [(पर)-(भाव) 2/2] णादूण (णा) सकृ विमुञ्चदे (विमुञ्च) व 3/1 सक णाणी (णाणि) 1/1 वि

18 अहमेक्को [(अहं)+(एक्को)] अहं (अम्ह) 1/1 स एक्को (एक्क) 1/1 सवि खलु (अ)=निश्चय ही सुद्धो (सुद्ध) 1/1 वि दसणणाणमइओ [(दसण-(णाणमइअ) 1/1 वि] सयारूवी [(सया)+(अरूवी)] सया (अ)=सदा अरूवी (अरूवि) 1/1वि ण (अ)=नही वि (अ)=इसलिए अत्थि (अ)=है मज्झ (अम्ह) 6/1 किंचि (अ)=कुछ वि (अ)=भी अण्ण (अण्ण) 1/1 सवि परमाणमेत्त [(परमाणु)-(मेत्त) 1/1]पि (अ)=भी

19 एदे (एद) 1/2 सवि सव्वे (सव्व) 1/2 सवि भावा (भाव) 1/2 पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा [(पोग्गल)-(दव्व)—(परिणाम)-(णिप्पण्ण) भूकृ 1/2 अनि] केवलिजिणेहि (केवलिजिण) 3/2 भणिदा (भण) भूकृ 1/2 किह (अ)=कैसे ते (त) 1/2 सवि जीवो (जीव) 1/1 त्ति (अ)=इस प्रकार वुच्चति (वुच्चति) व कर्म 3/2 सक अनि

20 अरसमरूवमगध [(अरस)+(अरूव)+(अगध)] अरस (अरस) 1/1वि अरूवं (अरूव) 1/1 वि अगध (अगध) 1/1 वि अव्वत्त (अव्वत्त) 1/1 वि चेदणागुणमसद्द [(चेदणा)+(गुण)+(असद्द)] [(चेदणा)-(गुण) 1/1] असद्द (असद्द) 1/1 वि जाण (जाण) विधि 2/1 सक अलिंगग्गहण [(अलिंग) वि—

(गहण) 1/1] जीवमणिद्दिट्ठसठाण [(जीव)+(अणिद्दिट्ठ)+(सठाण)] जीव (जीव) 1/1[(अणिद्दिट्ठ) वि-(मंठाण)1/1]

21 जीवस्स[1] (जीव) 6/1 णत्थि (अ)=नही है वण्णो (वण्ण) 1/1 ण (अ)=नही वि (अ)=भी वि य (अ)=भी गधो (गध) 1/1 रसो (रस) 1/1 फासो (फास) 1/1 रूव[2] (रूव) 1/1 सरीर (सरीर) 1/1. सठाण (सठाण) 1/1. सहणण (सहणण) 1/1

22 जीवस्स[3] (जीव) 6/1 णत्थि (अ)=नही है रागो (राग) 1/1 ण (अ)=नही वि (अ)=भी दोसो (दोस) 1/1 णेव (अ)= नही विज्जदे (विज्ज) व 3/1 अक मोहो (मोह) 1/1 णो (अ) =नही पच्चया (पच्चय) 1/2 कम्म (कम्म) 1/1 णोकम्मं (णोकम्म) 1/1 चावि (अ)=और भी से (त) 6/1 स

23 एदेहि[4] (एद) 3/2 स य (अ)=पादपूरक सबंधो (सबध) 1/1 जहेव (अ)=समानता व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। खीरोदय [(खीर)+(उदय)] [खीर)-(उदय) 1/1] मुणेदव्वो (मुण) विधिकृ 1/1 ण (अ)=नही य (अ)=बिल्कुल होंति (हो) व 3/2 अक तस्स[5] (त) 6/1 स ताणि (त) 1/2 स दु (अ)= तो उवओगगुणाधिगो [(उवओग)+(गुण)+(अधिगो)] [(उवओग)-(गुण)-(आधिग) 1/1 वि] जम्हा (अ)=क्योकि

1 कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-134)।,
2 रूप→रूव=शब्द (आप्टे सस्कृत-हिन्दी कोश)।
3 देखें गाथा 21
4 'सह', 'साथ के योग मे तृतीया होती है ।
5 कभी कभी सप्तमी के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-134) ।

24 पथे (पथ) 7/1 मुस्सत (मुस्सत) कर्म वकृ 2/1 अनि पस्सिदूण (पस्स) सकृ लोगा (लोग) 1/2 भणति (भण) व 3/2 सक ववहारी (ववहारि) 1/2 वि मुस्सदि (मुस्सदि) कर्म व 3/1 सक अनि एसो (एत) 1/1 सवि पथो (पथ) 1/1 ण (अ) = नहीं य (अ) = किन्तु मुस्सदे (मुस्सदे) कर्म व 3/1 सक अनि, कोई[1] (अ) = कोई

25 तह (अ) = उसी प्रकार जीवे (जीव) 7/1 कम्माणं[2] (कम्म) 6/2 णोकम्माणं[2] (णोकम्म) 6/2 च (अ) = और पस्सिदु (पस्स) सकृ वण्ण (वण्ण) 2/1 जीवस्स (जीव) 6/1 एस (एत) 1/1 सवि वण्णो[3] (वण्ण) 1/1 जिणेहि (जिण) 3/2 ववहारदो (ववहार) पंचमी आर्थक 'दो' प्रत्यय उत्तो (उत्त) भूकृ 1/1 अनि

26 गधरसफासरूवा [(गध)-(रस)-(फास)-(रूव) 1/2] देहो (देह) 1/1 सठाणमाइया [(सठाण)+(आइया)] सठाणं (सठाण) 1/1 आइया (आइय) 1/2 जे (ज) 1/2 सवि य (अ) = और सव्वे (सव्व) 1/2 सवि ववहारस्स[4] (ववहार) 6/1 य = पादपूरक णिच्छयदण्हू (णिच्छयदण्हु) 1/2 वि ववदिसति (ववदिस) व 3/2 सक

27 तत्थ (त) 7/1 सवि भवे (भव) 7/1 जीवाण (जीव) 6/2 ससारत्थाण (ससारत्थ) 6/2 वि होति (हो) व 3/2 अक

---

1 'इ' कभी कभी दीर्घ हो जाता है (पिशल पृष्ठ 138)।

2 कभी-कभी षष्ठी का प्रयोग तृतीया के स्थान पर पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-134)।

3 वण्ण = बाह्य दिखाव-बनाव (outward appearance), Monier Williams, Sanskrit-English Dictionary

4 कभी कभी तृतीया के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-134)।

वण्णादी [(वण्ण) + (आदी)] [(वण्ण) – (आदि) 1/2] ससारपमुक्काण [(ससार) – (पमुक्क[1]) 6/2 वि] णत्थि (अ)= नही है दु (अ)=परन्तु वण्णादओ [(वण्ण) + (आदओ)] [(वण्ण) – (आद) 1/1 'अ' स्वार्थिक] केई[2] (अ)=किसी भी प्रकार का

28 जीवो (जीव) 1/1 चेव (अ)=निस्सन्देह हि (अ)=पादपूरक एदे (एत) 1/2 सवि सव्वे (सव्व) 1/2 सवि भाव (भाव) मूल शब्द 1/2 त्ति (अ)=इस प्रकार मण्णसे (मण्ण) व 2/1 सक जदि (अ)=यदि हि (अ)=निश्चय से जीवस्साजीवस्स [(जीवस्स) + (अजीवस्स)] जीवस्स[4] (जीव) 6/1 अजीवस्स[4] (अजीव) 6/1 य (अ)=ही णत्थि (अ)=नही है विसेसो (विसेस) 1/1 दु (अ)=तो दे (अ)=पादपूरक कोई[5] (अ)=कोई

29 जाव (अ)=जब तक ण (अ)=नही वेदि[6] (वेदि) व 3/1 सक अनि विसेसतर [(विसेस) + अतर] [(विसेस) – (अंतर) 2/1] दु (अ)=पादपूरक आदासवाण [(आद) + (आसवाण)] [(आद) – (आसव) 6/2] दोण्ह (दो) 6/2 सवि पि (अ)=ही

1 कभी कभी सप्तमी के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3–134) ।
2 कभी कभी 'इ' दीर्घ हो जाता है ।
3 पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल सज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 517) ।
4 कभी कभी सप्तमी के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3–134) ।
5 कभी कभी 'इ' दीर्घ कर दिया जाता है (पिशल पृष्ठ 138)
6 विद्→वेत्ति→वेदि (भवादिगण परस्मैपदी)

अण्णाणी (अण्णाणि) 1/1 वि ताव (अ)=तब तक दु (अ)=ही सो (त) 1/1 सवि कोहादिसु[1] (कोहादि) 7/2 अनि वट्टदे (वट्ट) व 3/1 सक जीवो (जीव) 1/1

30 कोहादिसु[1] (कोहादि) 7/2 अनि. वट्ट तस्स (वट्ट) वकृ 6/1 तस्स (त) 6/1 स कम्मस्स (कम्म) 6/1 सचओ (सचअ) 1/1 होदि (हो) व 3/1 अक जीवस्सेवं [(जीवस्स)+(एव)] जीवस्स (जीव) 6/1 एवं (अ)=इस प्रकार बधो (बध) 1/1 भणिदो (भण) भूकृ 1/1 खलु (अ)=पादपूरक सव्वदरिसीहिं (सव्वदरिसि) 3/2

31 जइया (अ)=जिस समय इमेण (इम) 3/1 स जीवेण (जीव) 3/1 अप्पणो (अप्प) 6/1 आसवाण (आसव) 6/2 य तहेव (अ)=और णाद (णा) भूकृ 1/1 होदि (हो) व 3/1 अक विसेसतर [(विसेस)+(अतर)] [(विसेस)-(अतर) 1/1] तु (अ)=पादपूरक तइया (अ)=उस समय ण (अ)=नही बधो (बध) 1/1 स (त) 6/1 स

32 णादूण (णा) सकृ आसवाण (आसव) 6/2 असुचित्त (असुचिता) 2/1 च (अ)=और विवरीदभाव [(विवरीद)-(भाव) 2/1] दुक्खस्स (दुक्ख) 6/1 कारण (कारण) 1/1 त्ति (अ)=कही गई बात य (अ)=तथा तदो (अ)=उससे णियत्ति (णियत्ति) 2/1 कुणदि (कुण) व 3/1 सक जीवो (जीव) 1/1

---

1 कभी कभी द्वितीय विभक्ति के स्थान पर सप्तमी का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-135)।

2 कभी कभी द्वितीय विभक्ति के स्थान पर सप्तमी का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-135)।

33 अहमेक्को [(अह)+(एक्को)] अह (अम्ह) 1/1 स एक्को (एक्क) 1/1 वि खलु (अ)=निश्चय ही सुद्धो (सुद्ध) भूकृ 1/1 अनि य (अ) = तथा णिम्ममो (णिम्मम) 1/1 वि णाणदसणसमग्गो [(णाण)-(दसण)-(समग्ग) 1/1 वि] तम्हि (त) 7/1 स ठिदो (ठिद) भूकृ 1/1 अनि तच्चित्तो (तच्चित्त) 1/1 वि सव्वे (सव्व) 2/2 वि एदे (एद) 2/2 सवि खय (खय) 2/1 णेमि (णी) व 1/1 सक

34 जीवणिबद्धा [(जीव)-(णिबद्ध) भूकृ 1/2 अनि] एदे (एद) 1/2 सवि अधुव[1] (अधुव) मूल शब्द 1/2 वि अणिच्चा (अणिच्च) 1/2 वि तहा (अ)=तथा असरणा (असरण) 1/2 य (अ) =फिर भी दुक्खा (दुक्ख) 1/2 दुक्खाफला [(दुक्ख)-(फल) 1/2 वि] त्ति (अ)=इस प्रकार य (अ)=तथा णादूण (णा) सकृ णिवत्तदे (णिवत्त) व 3/1 अक तेहिं[2] (त) 3/2 स

35 ण (अ)=नही वि (अ)=कभी भी परिणमदि (परिणम) व 3/1 अक गिण्हदि (गिण्ह) व 3/1 सक उप्पज्जदि (उप्पज्ज) व 3/1 अक परदव्वपज्जाए [(पर) वि-(दव्व)-(पज्जाअ) 7/1] णाणी (णाणि) 1/1 वि जाणतो (जाण) वकृ 1/1 वि (अ)=पादपूरक हु (अ)=निश्चय ही पोग्गलकम्म [(पोग्गल)-(कम्म) 2/1] अणेयविह (अणेयविह) 2/1 वि

36 सगपरिणाम [(सग) वि-(परिणाम) 2/1] बाकी के लिए देखें 35

---

1 पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम मे लाया जा सकता है (पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 517)।

2 कभी कभी तृतीया विभक्ति का प्रयोग पचमी के स्थान पर पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-136)।

37 पोग्गलकम्मफल [(पोग्गल)-(कम्म)-(फल) 2/1] अणात (अणात) 2/1 बाकी के लिए देखें 35

38 वि (अ)=ही पोग्गलदव्व [(पोग्गल)-(दव्व)1/1] पि (अ)= भी तहा (अ)=उसी प्रकार सगेहि(सग) वि भावेहि(भाव) 3/2

39 जीव (जीव) मूलशब्द[1] परिणामहेदु [(परिणाम)-(हेदु) 1/1] कम्मत्त (कम्मत्त) 2/1 पोग्गला (पोग्गल)1/2 परिणमंति (परिणम) व 3/2 सक पोग्गलकम्मणिमित्त [(पोग्गल)-(कम्म)-(णिमित्त) 1/1] तहेव (अ)=उसी प्रकार जीवो (जीव) 1/1 वि (अ)=भी परिणमदि (परिणम) व 3/1 अक

40 ण वि (अ)=कभी नहीं कुव्वदि (कुव्व) व 3/1 सक कम्मगुणे [(कम्म)-(गुण) 2/2] जीवो (जीव) 1/1 कम्म (कम्म) 1/1 तहेव (अ)=उसी प्रकार जीवगुणे [(जीव)-(गुण) 2/2] अण्णोण्णणिमित्तेण [(अण्णोण्ण) वि-(णिमित्त) 3/1] दु (अ)= परन्तु परिणाम (परिणाम) 2/1 जाण (जाण) विधि 2/1 सक दोण्ह (दो) 6/2 पि (अ)=ही

41 एदेण (एद) 3/1 सवि कारणेण (कारण) 3/1 दु (अ)=ही कत्ता (कत्तु) 1/1 आदा (आद) 1/1 सगेण (सग) 3/1 वि भावेण (भाव) 3/1 पोग्गलकम्मकदाणं [(पोग्गल)-(कम्म)-(कद) भूकृ 6/2 अनि] ण (अ)=नहीं दु (अ)=परन्तु कत्ता (कत्तु) 1/1 सव्वभावाण [(सव्व) वि-(भाव) 6/2]

42 णिच्छयणयस्स (णिच्छयणय) 6/1 एवं (अ)=इस प्रकार आदा (आद) 1/1 अप्पाणमेव [(अप्पाण) + (एव)] अप्पाण (अप्पाण)

---

1 पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ, 517)

2/1 एव (अ)=ही हि (अ)=पाद पूर्ति करेदि (कर) व 3/1 सक वेदयदि (वेदयदि) व 3/1 सक अनि पुणो (अ)=तथा त (त) 2/1 सवि चेव (अ)=ही जाण (जाण) विधि) 2/1 सक अत्ता (अत्त) 1/1 दु (अ)=ही अत्ताण (अत्ताण) 2/1

43 ववहारस्स (ववहार) 6/1 दु (अ)=किन्तु आादा (आद) 1/1 पोग्गलकम्मं [(पोग्गल)-(कम्म) 2/1] करेदि (कर) व 3/1 सक णेयविह (णेयविह) 2/1 वि त (त) 2/1 सवि चेव (अ)=ही य (अ)=तथा वेदयदे (वेदयदे) व 3/1 सक अनि अणेयविह (अणेयविह) 2/1 वि

44 जदि (अ)=यदि पोग्गलकम्ममिण [(पोग्गल)+(कम्मं)+(इण)] [(पोग्गल)-(कम्म) 2/1] इण (इम) 2/1 सवि कुव्वदि (कुव्व) व 3/1 सक त (त) 2/1 सवि चेव (अ)=ही वेदयदि (वेदयदि) व 3/1 सक अनि आादा (आद) 1/1 दोकिरियावदिरित्तो[(दो) वि-(किरिया)-(अवदिरित्त) 1/1 वि] पसज्जदे (पसज्ज) व 3/1 अक सो (त) 1/1 सवि जिणावमदं [(जिण)+(अव)+(मद)] [(जिण-(अव) अ=विपरीत-(मद)[1] 2/1]

45 ज (ज) 2/1 सवि कुणदि (कुण) व 3/1 सक भावमादा [(भाव)+(आादा)] भावं (भाव) 2/1 आादा (आद) 1/1 कत्ता (कत्तु) 1/1 वि सो (त) 1/1 सवि होदि (हो) व 3/1 अक तस्स (त) 6/1 स भावस्स (भाव) 6/1 कम्मत्त (कम्मत्त) 2/1 परिणमदे (परिणाम) व 3/1 सक तम्हि (त) 7/1 स सय (अ)=अपने आप पोंग्गल (पोंग्गल) 1/1 दव्वं (दव्व) 1/1

1 कभी कभी सप्तमी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-137)

46 परमप्पाण [(पर) + (अप्पाण)] पर (पर) 2/1 वि अप्पाण[1] (अप्पाण) 2/1 कुव्व[2] (कुव्व) वकृ 1/1 अप्पाण (अप्पाण) 2/1 पि (अ)=भी य (अ)=और पर[1] (पर) 2/1 वि करतो (कर) वकृ 1/1 सो (त) 1/1 सवि अण्णाणमओ (अण्णाणमअ) 1/1 वि जीवो (जीव) 1/1 कम्माण (कम्म) 6/2 कारगो (कारग) 1/1 वि होदि (हो) व 3/1 अक

47 परमप्पाणमकुव्वं [(परं) + (अप्पाण) + (अकुव्व)] पर (पर) 2/1 वि अप्पाण[3] (अप्पाण) 2/1 अकुव्व[4] (अकुव्व) वकृ 1/1 अप्पाण (अप्पाण) 2/1 पि (अ)=भी य (अ)=और पर[1] (पर) 2/1 वि अकुव्वतो (अकुव्व) वकृ 1/1 सो (त) 1/1 सवि णाणमओ (णाणमअ) 1/1 वि जीवो (जीव) 1/1 कम्माणमकारगो [(कम्माण) + (अकारगो)] कम्माण (कम्म) 6/2 अकारगो (अकारग) 1/1 वि होदि (हो) व 3/1 अक

48. एव (अ)=इस प्रकार पराणि (पर) 2/2 वि दव्वाणि (दव्व) 2/2 अप्पय[5] (अप्प) 2/1 'य' स्वार्थिक प्रत्यय कुणदि (कुण) व 3/1 सक मदबुद्धीओ [(मद)-(बुद्धि) 1/2] अप्पाण (अप्पाण) 2/1 अवि(अ)=भी य (अ)=और पर[5] (पर) 2/1 वि

---

1 कभी कभी सप्तमी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-137)

2 छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'कुव्वतो' के 'तो' का लोप हुआ है।

3 कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-137)

4 छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'अकुव्वतो' के 'तो' का लोप हुआ है।

5 कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-137)

करेदि (कर) व 3/1 अण्णाणभावेण [(अण्णाण)-(भाव) 3/1]

49 एदेण (एद) 3/1 सवि दु (अ)=ही सो (त) 1/1 सवि कत्ता (कत्तु) 1/1 वि आदा (आद) 1/1 णिच्छयविदूहिं [(णिच्छय) -(विदु) 3/2 वि] परिकहिदो (परिकह) भूकृ 1/1 एव (अ) =इस प्रकार खलु (अ)=निश्चयपूर्वक जो (ज) 1/1 सवि जाणदि (जाण) व 3/1 सक सो (त) 1/1 सवि मुञ्चदि (मुञ्च) व 3/1 सक सव्वकत्तित्त [(सव्व) वि-(कत्तित्त) 2/1]

50 ववहारेण (ववहार) 3/1 दु (अ)=ही आदा (आद) 1/1 करेदि (कर) व 3/1 सक घडपडरथादिदव्वाणि [(घड)+(पड) +(रथ)+(आदि)+(दव्वाणि)] [(घड)—(पड)—(रथ)-(आदि)-(दव्व) 2/2] करणाणि (करण) 2/2 य (अ)=और कम्माणि (कम्म) 2/2 य (अ)=और णोकम्माणीह [(णोकम्माणि)+(इह)] णोकम्माणि (णोकम्म) 2/2 इह (अ)=इस लोक मे विविहाणि (विविह) 2/2 वि

51 जदि (अ)=यदि सो (त) 1/1 सवि परदव्वाणि [(पर) वि-(दव्व) 2/2] य (अ)=पाद पूर्ति करेज्ज (कर) विधि 3/1 सक णियमेण (क्रिविअ)=नियम से तम्मओ (तम्मअ) 1/1 होज्ज (हो) भवि 3/1 अक जम्हा (अ)=चूँकि ण (अ)=नही तेण (अ)=इसलिए तेसिं (त) 6/2 हवदि (हव) व 3/1 अक कत्ता (कत्तु) 1/1 वि

52 जीवो (जीव) 1/1 ण (अ)=नही करेदि (कर) व 3/1 सक घड (घड) 2/1 णेव (अ)=नही पड (पड) 2/1 सेसगे (सेस) 2/2 वि स्वार्थिक 'ग' प्रत्यय दव्वे (दव्व) 2/2 जोगुवओगा

[(जोग) + (उवग्रोगा)] [(जोग) — (उवग्रोग)[1] 5 1]
उप्पादगा[1] (उप्पादग) 5/1 वि य (ग) = तथा तेसि (त) 6/2
हवदि (हव) व 3/1 ग्रक कत्ता (कत्तु) 1/1 वि

53 जे (ज) 1,2 सवि पोग्गलदव्वाण [(पोग्गल)-(दव्व) 6/2]
परिणामा (परिणाम) 1/2 होति (हो) व 3/2 ग्रक
णाणग्रावरणा [(णाण)-(ग्रावरण) 1/2] ण (ग्र) = नही
करेदि (कर) व 3/1 सक ताणि (त) 2/2 ग्रादा (ग्राद) 1/1
जो (ज) 1/1 सवि जाणदि (जाण) व 3/1 सक सो (त)
1/1 सवि हवदि (हव) व 3/1 ग्रक णाणी (णाणि) 1/1 वि

54 ज (ज) 2/1 सवि भाव (भाव) 2/1 सुहमसुह [(सुह) +
(ग्रसुह)] सुह (सुह) 2/1 वि ग्रसुह (ग्रसुह) 2/1 वि करेदि
(कर) व 3/1 सक ग्रादा (ग्राद) 1/1 स (त) 1/1 सवि तस्स (त)
6/1 खलु (ग्र) = निश्चय ही कत्ता (कत्तु) 1/1 वि त (त) 1/1
सवि होदि (हो) व 3/1 ग्रक कम्म (कम्म) 1/1 सो (त) 1/1
सवि दु (ग्र) = ही वेदगो (वेदग) 1/1 वि ग्रप्पा (ग्रप्प) 1/1

55 जो (ज) 1/1 सवि जम्हि (ज) 7/1 सवि गुणो[3] (गुण) 1/1
दव्वे (दव्व) 7/1 सो (त) 1/1 सवि ग्रण्णम्हि[2] (ग्रण्ण) 7/1
सवि दु (ग्र) = निश्चय ही ण (ग्र) = नही सकमदि (सकम) व

---

1 किसी कार्य का कारण व्यक्त करने वाली स्त्रीलिंग-भिन्न संज्ञा को तृतीया या पचमी मे रखा जाता है।

2 कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान मे सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत – व्याकरण, 3-135) गत्यार्थक क्रिया के योग मे द्वितीया विभक्ति होती है।

3 'गुणे' के स्थान पर 'गुणो' पाठ ठीक प्रतीत होता है (समयसार कुन्दकुन्द भारती के ग्रन्तगत, स पन्नालाल साहित्याचार्य)।

१/1 सक दव्वे (दव्व) 7/1 अण्णमसंकतो [(अण्ण) + (असंकतो)] अण्ण (अण्ण) 2/1 सवि असकतो (असकत) भूकृ 1/1 अनि किह (अ)=किस प्रकार त (त) 2/1 सवि परिणामए[1] (परिणाम) व 3/1 सक दव्व (दव्व) 2/1

56 दव्वगुणस्स[2] [(दव्व)-(गुण) 6/1] य (अ)=सर्वथा आदा (आद) 1/1 ण (अ)=नही कुणदि (कुण) व 3/1 सक पोंग्गलमयम्हि (पोंग्गलमय) 7/1 कम्मम्हि (कम्म) 7/1 त (त) 2/1 सवि उहयमकुव्वतो [(उहय) + (अकुव्वतो) उहयं (उहय) 2/1 वि अकुव्वतो (अकुव्व) वकृ 1/1 तम्हि (त) 7/1 सवि कह (अ)=कैसे तस्स (त) 6/1 स सो (त) 1/1 सवि कत्ता (कत्तु) 1/1 वि

57 जोवम्हि[3] (जीव) 7/1 हेदुभूदे[3] [(हेदु)-(भूद) भूकृ 7/1 अनि] बधस्स (बध) 6/1 दु (अ)=पाद पूर्ति पस्सिदूण (पस्स) संकृ परिणाम (परिणाम) 2/1 जीवेण (जीव) 3/1 कदं (कद) भूकृ 1/1 अनि कम्म (कम्म) 1/1 भण्णदि (भण्णदि) व कर्म 3/1 मक अनि उवयारमेत्तेण (क्रिविअ)=उपचार मात्र से

58 जोधेहि (जोध) 3/2 कदे[4] (कद) भूकृ 7/1 अनि जुद्धे[4] (जुद्ध) 7/1 रायेण (राय) 3/1 कद (कद) भूकृ 1/1 अनि. त्ति (अ)

---

1 प्रश्नवाचक शब्दों के साथ वर्तमान काल का प्रयोग प्राय भविष्यत् काल के अर्थ में होता है।

2 कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान मे षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण . 3-134)।

3 एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया होने पर पहली क्रिया में सप्तमी होती है। कर्तृवाच्य में कर्त्ता और कृदन्त में सप्तमी होती है।

4 एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया होने पर पहली क्रिया में सप्तमी होती हैं। कर्मवाच्य में कर्म और कृदन्त में सप्तमी होती हैं, कर्त्ता में तृतीया होती है।

=इस प्रकार जम्पदे (जम्प) व 3/1 सक लोगो (लोग) 1/1 तह (अ)=उसी प्रकार ववहारेण (ववहार) 3/1 कद (कद) भूक 1/1 अनि णाणावरणादि [(णाणावरण) + (आदि)] [(णाणावरण) - (आदि)[1] मूल शब्द 1/1] जीवेण (जीव) 3/1

59 उप्पादेदि (उप्पाद) व 3/1 सक करेदि (कर) व 3/1 सक य (अ)=और बंधदि (बध) व 3/1 सक परिणामएदि[2] (परिणाम) व प्रेरक 3/1 सक गिण्हदि (गिण्ह) व 3/1 सक य (अ)=और आदा (आद) 1/1 पोंग्गलदव्वं [(पोंग्गल)-(दव्व) 2/1] ववहारणयस्स (ववहारणय) 6/1 वत्तव्व (वत्तव्व) 1/1

60 जह (अ)=जैसे राया (राय) 1/1 ववहारा (ववहारा) 5/1 दोसगुणुप्पादगो [(दोस) + (गुण) + (उप्पादगो)] [(दोस)-(गुण)-(उप्पादग) 1/1 वि] ति (अ)=समाप्ति-सूचक आलविदो (आलव) भूक 1/1 तह (अ)=वैसे ही जीवो (जीव) 1/1 ववहारा[3] (ववहारा) 5/1 दव्वगुणुप्पादगो [(दव्व) + (गुण) (उप्पादगो)] [(दव्व)—(गुण)—(उप्पादग) 1/1 वि] भणिदो (भण) भूक 1/1

61 ज (ज) 2/1 सवि कुणदि (कुण) व 3/1 सक भावमादा [(भाव) + (आदा)] भाव (भाव) 2/1 आदा (आद) 1/1 कत्ता (कत्तु) 1/1 वि सो (त) 1/1 सवि होदि (हो) व 3/1

---

1 पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल सज्ञा शब्द काम मे लाया जा सकता है। (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

2 प्रेरणार्थक बनाने के लिए 'ए' आदि प्रत्यय जोडे जाते है (परिणाम+ए) परिणामेदि किन्तु यहाँ मात्रा के लिए 'ए' को अलग रक्खा गया है अत 'परिणामएदि'

3 किसी कार्य का कारण व्यक्त करने के लिए (स्त्रीलिंग भिन्न) सज्ञा मे तृतीया या पचमी का प्रयोग किया जाता है।

अक तस्स (त) 6/1 स कम्मस्स (कम्म) 6/1 णाणिस्स (णाणि) 6/1 वि दु (अ)=पाद-पूर्ति णाणमओ (णाणमअ) 1/1 वि अण्णाणमओ (अणाणमअ) 1/1 वि अणाणिस्स (अणाणि) 6/1 वि

62 अण्णाणमओ (अण्णाणमअ) 1/1 वि भावो (भाव) 1/1 अणाणिणो (अणाणि) 6/1 वि कुणदि (कुण) व 3/1 सक तेण (अ)=इसलिए कम्माणि (कम्म) 2/2 णाणमओ (णाणमअ) 1/1 वि णाणिस्स (णाणि) 6/1 वि दु (अ)=परन्तु ण (अ) =नहीं तम्हा (अ)=इसलिए दु (अ)=पाद-पूर्ति कम्माणि (कम्म) 2/2

63 णाणमया (णाणमय) 5/1 वि भावादो (भाव) 5/1 णाणमओ (णाणमय) 1/1 वि चेव (अ)=ही जायदे (जाय) व 3/1 अक भावो (भाव) 1/1 जम्हा (अ)=चूँकि तम्हा (अ)=इसलिए णाणिस्स (णाणि) 6/1 सव्वे (सव्व) 1/2 भावा (भाव) 1/2 हु (अ)=ही णाणमया (णाणमय) 1/2

64 अण्णाणमया (अण्णाणमय) 5/1 भावा (भाव) 5/1 अण्णाणो (अण्णाण) 1/1 चेव (अ)=ही जायदे (जाय[1]) व 3/1 अक भावो (भाव) 1/1 जम्हा (अ)=चूँकि तम्हा (अ)=इसलिए भावा (भाव) 1/2 अण्णाणमया (अण्णाणमय) 1/2 अणाणिस्स (अणाणि) 6/1

65 कणयमया (कणयमय) 5/1 वि भावादो (भाव) 5/1 जायते (जाय) व 3/2 अक कुडलादयो [(कुडल) + (आदयो)] [(कुडल)—(आदि) 1/2] भावा (भाव) 1/2 अयमयया

1 [जा+अ (य)] जा' में 'य' विकल्प से जोडा गया है।

(अयमय) 5/1 वि स्वार्थिक 'य' प्रत्यय जह (अ)=जैसे दु (अ)= और कडयादी [(कडय)+(आदी)] [(कडय)—(आदि) 1/2]

66 अण्णाणमया (अण्णाणमय) 1/2 भावा (भाव) 1/2 अणाणिणो (अणाणि) 6/1 बहुविहा (बहुविह) 1/2 वि (अ)=ही जायते (जाय) व 3/2 अक णाणिस्स (णाणि) 6/1 दु (अ)=तथा णाणमया (णाणमय) 1/2 सव्वे (सव्व) 1/2 सवि तहा(अ)= वैसे ही होंति (हो) व 3/2 अक

67 जीवे[1] (जीव) 7/1 कम्म (कम्म) 1/1 बद्ध (बद्ध) भूकृ 1/1 अनि पुट्ठ (पुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि चेदि [(च)+(इदि)]च (अ)= और इदि (अ)=इस प्रकार ववहारणयभिणिद [(ववहारणय)-(भण) भूकृ 1/1] सुद्धणयस्स (सुद्धणय) 6/1 दु (अ)=किन्तु अबद्धपुट्ठ [अबद्ध) + (अपुट्ठ)] [(अबद्ध)-(अपुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि] हवदि (हव) व 3/1 अक कम्म (कम्म) 1/1

68 कम्म (कम्म) 1/1 बद्धमबद्ध [(बद्ध) + (अबद्ध)] [(बद्ध) भूकृ 1/1 अनि-(अबद्ध) भूकृ 1/1 अनि) जीवे[2] (जीव) 7/1 एद (एद) 2/1 सवि तु (अ)=तो जाण (जाण) विधि 2/1 सक णयपक्खं [(णय)-(पक्ख) 2/1] णयपक्खातिक्कंतो [(णय) + (अतिक्कंतो)] [(णय)-(पक्ख)-(अतिक्कंत) 1/1 वि] भण्णदि (भण्णदि) व कर्म 3/1 सक अनि जो (ज) 1/1 सवि सो (त) 1/1 सवि समयसारो (समयसार) 1/1

---

1 कभी कभी तृतीया के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-135)

2 कभी कभी तृतीया के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-135)

69 दोण्ह (दो) 6/2 वि वि (अ)=ही णयाण (णय) 6/2 भणिद (भणिद) 2/1 जाणदि (जाण) व 3/1 सक णवरि (अ)= केवल तु (अ)=तो समयपडिबद्धो [(समय)-(पडिबद्ध) भूकृ 1/1 अनि] ण (अ)=नहीं दु (अ)=पाद-पूर्ति णयपक्खं [(णय)-(पक्ख) 2/1] गिण्हदि (गिण्ह) व 2/1 सक किंचि (अ)= थोड़ी वि (अ)=भी णयपक्खपरिहीणो [(णय)-(पक्ख)-(परिहीण) भूकृ 1/1 अनि]

70 सम्मद्दंसणणाणं [(सम्मद्दंसण)-(णाण) 2/1 एसो (एत) 1/1 सवि लहदि (लह) व 3/1 सक त्ति (अ)=इस प्रकार णवरि (अ) =केवल ववदेस (ववदेस) 2/1 सव्वणयपक्खरहिदो [(सव्व)-(णय)-(पक्ख)-(रह) भूकृ 1/1] भणिदो (भण) भूकृ 1/1 जो (ज) 1/1 सवि सो (त) 1/1 सवि समयसारो (समयसार) 1/1

71 कम्ममसुह [(कम्म)+(असुह)] कम्म (कम्म) 1/1 असुह (असुह) 1/1 वि कुसील (कुसील) 1/1 वि सुहकम्म [(सुह) -(कम्म) 1/1 चावि (अ)=और जाणह (जाण) विधि 2/2 सक सुसील (सुसील) 1/1 वि किह (अ)=कैसे त (त) 1/1 सवि होदि (हो) व 3/1 अक ज (ज) 1/1 सवि ससार (ससार) 2/1 पवेसेदि (पवेस) व 3/1 सक

72 सोवण्णिय (सोवण्णिय) 1/1 वि पि (अ)=भी णियलं (णियल) 1/1 बंधदि (बंध) व 3/1 सक कालायस [(काल)+(आयस)] [(काल)-(आयस) 1/1 वि] पि (अ)=और जह (अ)=जैसे पुरिस (पुरिस) 1/1 एव (अ)=वैसे ही जीव (जीव) 2/1 सुहमसुह [(सुह)+(असुहं)] सुह (सुह) 1/1 वि असुह (असुह) 1/1 वि वा कद (कद) भूकृ 1/1 अनि कम्म (कम्म) 1/1

73 तम्हा (अ)=इसलिए दु (अ)=तो कुसीलेहि (कुसील) 3/2 वि य (अ)=बिल्कुल राग (राग) 2/1 मा (अ)=मत काहि (का) विधि 2/1 सक व (अ)=और संसग्गि (संसग्गि) 2/1 साधीणो (साधीण) 1/1 वि हि (अ)=क्योंकि विणासो (विणास) 1/1 कुसीलसंसग्गिरागेण [(कुसील)-(संसग्गि)-(राग) 3/1]

74 जह (अ)=जैसे णाम (अ)=निश्चय ही को[1] वि (क) 1/1 स पुरिसो (पुरिस) 1/1 कुच्छियसील [(कुच्छियसील) 2/1 वि जण (जण) 2/1 वियाणित्ता (वियाण) संकृ वज्जेदि (वज्ज) व 3/1 सक तेण[2] (त) 3/1 स समय (अ)=साथ संसग्गि (संसग्गि) 2/1 रागकरण [(राग) — (करण) 2/1] च (अ)=और

75 एमेव (अ)=इसी प्रकार कम्मपयडी [(कम्म)—(पयडि) 1/1] सीलसहाव [(सील)—(सहाव) 2/1] हि (अ)=निश्चय ही कुच्छिद (कुच्छिद) 2/1 वि णादु (णा) संकृ वज्जंति (वज्ज) व 3/2 सक परिहरंति(परिहर)व 3/2 सक य (अ)=और त (त) 2/1 सवि संसग्गि (संसग्गि) 2/1 सहावरदा [(सहाव)—(रद) भूकृ 1/2 अनि]

76 रत्तो (रत्त) भूकृ 1/1 अनि बंधदि (बंध) व 3/1 सक कम्म (कम्म) 2/1 मुञ्चदि (मुञ्च) व 3/1 सक जीवो (जीव) 1/1 विरागसंपण्णो [(विराग)—(संपण्ण) भूकृ 1/1 अनि] एसो (एत) 1/1 सवि जिणोवदेसो [(जिण) + (उवदेसो)] [(जिण) —(उवदेस) 1/1] तम्हा (अ) =इसलिए कम्मेसु (कम्म) 7/1 मा (अ)=मत रज्ज (रज्ज) विधि 2/1 अक

---

1 अनिश्चय अर्थ प्रकट करने के लिए 'क' के साथ वि आदि जोड दिये जाते हैं।

2 'साथ' के योग में तृतीया होती है।

77 परमट्ठो (परमट्ठ) 1/1 खलु (अ)=निश्चय ही समओ (समग्र) 1/1 सुद्धो (सुद्ध) भूकृ 1/1 अनि जो (ज) 1/1 सवि केवली (केवलि) 1/1 वि मुणी (मुणि) 1/1 वि णाणी (णाणि) 1/1 वि तम्हि (त) 7/1 स ट्ठिवा (ट्ठिद) भूकृ 1/2 अनि सहावे (सहाव) 7/1 मुणिणो (मुणि) 1/2 वि पावंति (पाव) व 3/2 सक णिव्वाण (णिव्वाण) 2/1

78 परमट्ठम्मि (परमट्ठ) 7/1 दु (अ)=किन्तु अठिदो (अठिद) भूकृ 1/1 अनि जो (ज) 1/1 सवि कुणदि (कुण) व 3/1 सक तव (तव) 2/1 वद (वद) 2/1 च (अ)=और धारयदि (धारयदि) व 3/1 सक अनि त (त) 2/1 सवि सव्व (सव्व) 2/1 वि वालतव [(वाल) वि—(तव) 2/1] वालवदं [(वाल) वि—(वद) 2/1] विंति (वू) व 3/2 सक सव्वण्हू (सव्वण्हु) 1/2 वि

79 वदणियमाणि [(वद)—(णियम) 2/2] धरता (धर) वकृ 1/2 सीलाणि (सील) 2/2 तहा (अ)=तथा तव (तव) 2/1 च (अ)=और कुव्वता (कुव्व) वकृ 1/2 परमट्ठवाहिरा [(परमट्ठ) —(वाहिर) 1/1वि] जे (ज) 1/2 सवि णिव्वाणं (णिव्वाण) 2/1 ते (त) 1/2 सवि ण (अ)=नहीं विंदति (विंद) व 3/2सक

80 परमट्ठवाहिरा [(परमट्ठ)—(वाहिर) 1/2 वि] जे (ज) 1/2 सवि ते (त) 1/2 सवि अण्णाणेण (अण्णाण) 3/1 पुण्णमिच्छंति [(पुण्ण)+(इच्छंति)] पुण्ण (पुण्ण) 2/1 इच्छंति (इच्छ) व 3/2 सक संसारगमणहेदु [(संसार)—(गमण)—(हेदु) 2/1] वि (अ)=और मोक्खहेदु [(मोक्ख)—(हेदु) 2/1] अयाणता (अयाण) वकृ 1/2

81 जीवादीसद्दहण [(जीव) + (आदी[1]) + (सद्दहण)] [(जीव— (आदी) - (सद्दहण) 1/1] सम्मत्त (सम्मत्त) 1/1 तेसिमधिगमो [(तेसिं) + (अधिगमो)] तेसिं (त) 6/2 स अधिगमो (अधिगम) 1/1 णाण (णाण) 1/1 रागादीपरिहरण [(राग) + (आदी) + (परिहरण)] [(राग) - (आदी[1]) - (परिहरण) 1/1 चरणं (चरण) 1/1 एसो (एत) 1/1 सवि दु (अ) = ही मोक्खपहो [(मोक्ख) - (पह) 1/1]

82 मोत्तूण (मोत्तूण) सक्र अनि णिच्छयट्ठ [(णिच्छय) + (अट्ठ)] [(णिच्छय) - (अट्ठ) 2/1 ववहारेणं[2] (ववहार) 3/1 विदुसा (वदुस) 1/1 वि पवट्टंति (पवट्ट) व 3/2 अक परमट्ठमस्सिदाण [(परमट्ठ) + (अस्सिदाण)] परमट्ठ (परमट्ठ) 2/1 अस्सिदाण (अस्सिद[3]) भूकृ 6/2 अनि दु (अ) = ही जदीण (जदि) 6/2 कम्मक्खओ [(कम्म) - (क्खअ) 1/1] होदि (हो) व 3/1 अक

83 वत्थस्स (वत्थ) 6/1 सेदभावो [(सेद)वि— (भाव) 1/1] जह (अ) = जिस प्रकार णासदि (णास) व3/1अक मलविमेलणाच्छण्णो [(मल) + (विमेलण) + (आच्छण्णो)] [(मल) — (वि-मेलण) - (आच्छण्ण) भूकृ 1/1 अनि] मिच्छत्तमलोच्छण्ण [(मिच्छत्त) + (मल) + (उच्छण्ण)] [(मिच्छत्त) — (मल) — (उच्छण्ण) भूकृ 1/1 अनि] तह (अ) = उसी प्रकार सम्मत्त (सम्मत्त) 1/1 खु (अ) = निश्चय ही णादव्व (णा) विधिकृ 1/1

---

1 समासगत शब्दों में स्वर ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाया करते हैं। यहाँ 'आदि' के स्थान पर 'आदी' हुआ है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 1-4)

2 कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-137)

3 'अस्सिद' कर्म के साथ कर्तृवाच्य में कभी कभी प्रयुक्त होता है।

84 अण्णाणमलोच्छण्ण [(अण्णाण) + (मल) + (उच्छण्ण)] [(अण्णाण)-(मल)-(उच्छण्ण) भूकृ 1/1 अनि] णाण (णाण) 1/1 होदि (हो) व 3/1 अक (बाकी के लिए देखें 83)

85 कस्सायमलोच्छण्ण [(कस्साय) + (मल) + (उच्छण्ण)] [(कस्साय) —(मल)—(उच्छण्ण) भूकृ 1/1 अनि] चारित्त (चारित्त) 1/1 पि (अ)=भी (बाकी के लिए देखें 83)

86 सो (त) 1/1 सवि सव्वणाणदरिसी [(सव्व) वि—(णाण)—(दरिसि) 1/1 वि] कम्मरयेण [(कम्म) — (रय) 3/1] णिएणावच्छण्णो [(णिएण) + (अव—छण्णो)] णिएण (णिअ) 3/1 अवछण्णो (अव-छण्ण) 1/1 वि ससारसमावण्णो [(संसार) —(समावण्ण) 1/1 वि] ण (अ)=नहीं विजाणदि (विजाण) व 3/1 सक सव्वदो (अ)=पूर्णरूपसे सव्व (सव्व) 2/1 सवि

87 णत्थि (अ)=नहीं होता है दु (अ) = इसलिए आसवबंधो [(आसव)—(बंध) 1/1] सम्मादिट्ठिस्स (सम्मादिट्ठि) 6/1 आसवणिरोहो [(आसव)—(णिरोह)] 1/1 संते (सत) 2/2 वि पुव्वणिवद्धे [(पुव्व) वि — (णिवद्ध) भूकृ 2/2 अनि] जाणदि (जाण) व 3/1 सक सो (त) 1/1 सवि ते (त) 2/2 सवि अवधतो (अवंध) वकृ 1/1

88 भावो (भाव) 1/1 रागादिजुदो [(राग) + (आदि) + (जुदो)] [(राग)-(आदि)-(जुद) 1/1 वि] जीवेण (जीव) 3/1 कदो (कद) भूकृ 1/1 अनि दु (अ)=ही बंधगो (बंधग) 1/1 वि होदि (हो) व 3/1 अक रागादिविप्पमुक्को [(राग) + (आदि) + (विप्पमुक्को)] [(राग)—(आदि)—(विप्पमुक्क) 1/1 वि] अबधगो (अबधग) 1/1 वि जाणगो (जाणग) 1/1 वि णवरि (अ)= केवल

89 पक्के (पक्क) 7/1 वि फलम्मि[1] (फल) 7/1 पडिदे[1] (पड) भूकृ 7/1 जह (अ)=जैसे ण (अ)=नही फल (फल) 1/1 वज्झदे (वज्झदे) व कर्म 3/1 सक अनि पुणो (अ)=फिर से विंटे (विंट) 7/1 जीवस्स (जीव) 6/1 कम्मभावे[1] [(कम्म)-(भाव) 7/1] पुणोदयमुवेदि [(पुण) + (उदय) + (उवेदि)] पुण (अ)= फिर से उदय (उदय) 2/1 उवेदि (उवि) व 3/1 सक

90 रागो (राग) 1/1 दोसो (दोस) 1/1 मोहो (मोह) 1/1 य (अ) =और आसवा (आसव) 1/2 णत्थि (अ)=नही होते हैं सम्मदिट्ठिस्स (सम्मदिट्ठि)6/1 तम्हा (अ)=इसलिए आसवभावेण [(आसव)-(भाव) 3/1] विणा (अ)=विना हेदू (हेदु) 1/1 ण (अ)=नही पच्चया (पच्चय) 1/2 होंति (हो) व 3/2 अक

91 उवओगे (उवओग) 7/1 उवओगो (उवओग) 1/1 कोहादिसु (कोहादि) 7/2 अनि णत्थि (अ)=नही रहती है को वि (क) 1/1 सवि कोहे (कोह) 7/1 कोहो (कोह) 1/1 चेव (अ)=ही हि (अ)=इसलिए खलु (अ)=निश्चय ही

92 एद (एद) 1/1 सवि तु (अ)=पादपूरक अविवरीद (अविवरीद) 1/1 वि णाण (णाण) 1/1 जइया (अ)= जिस समय दु (अ)=निश्चय ही होदि (हो) व 3/1 अक जीवस्स (जीव)6/1 तइया (अ)=उस समय ण (अ)=नही किंचि (क) 1/1 सवि कुव्वदि (कुव्व) व 3/1 सक भाव (भाव) 2/1 उवओगसुद्धप्पा [(उवओग)—(सुद्धप्प) 1/1]

93 जह (अ)=जैसे कणयमग्गितविय [(कणय) + (अग्गि) + (तविय)] कणय (कणय) 1/1 [(अग्गि)—(तव) भूकृ 1/1]

---

1 गाथा 36 देखो।

पि (अ)=भी कणयसहाव [(कणय)—(सहाव) 2/1] ण (अ)= नहीं त (अ)=वाक्य की शोभा परिच्चयदि (परिच्चय) व 3/1 सक तह (अ)=वैसे ही कम्मोदयतविदो [(कम्म)+(उदय)+(तविदो)] [(कम्म)-(उदय)-(तव) भूकृ 1/1] जहदि (जह) व 3/1 सक णाणी (णाणि) 1/1 वि दु (अ)=भी णाणित्त (णाणित्त) 2/1

94 एव (अ)=इस प्रकार जाणदि (जाण) व 3/1 सक णाणी (णाणि) 1/1 वि अण्णाणी (अण्णाणि) 1/1 वि मुणदि (मुण) व 3/1 सक रागमेवाद [(राग)+(एव)+(आद)] राग (राग) 2/1 एव (अ)=ही आद (आद) 2/1 अण्णाणतमोच्छण्ण [(अण्णाण)+(तम)+(उच्छण्ण)] [(अण्णाण)-(तम)-(उच्छण्ण) भूकृ 2/1 अनि] आदसहाव [(आद)-(सहाव) 2/1] अयाणतो (अयाण) वकृ 1/1

95 सुद्ध (सुद्ध) 2/1 वि तु (अ)=पादपूर्ति वियाणतो (वियाण) वकृ 1/1 विसुद्धमेवप्पय [(विसुद्ध)+(एव)+(अप्पय)] विसुद्ध (विसुद्ध) 2/1 वि एव (अ)=ही अप्पयं (अप्प) 2/1 स्वार्थिक 'य' प्रत्यय लहदि (लह) व 3/1 सक जीवो (जीव) 1/1 जाणतो (जाण) वकृ 1/1 दु (अ)=तथा असुद्ध (असुद्ध) 2/1 वि असुद्धमेवप्पय [(असुद्ध)+(एव)+(अप्पय)] असुद्ध (असुद्ध) 2/1 वि एव (अ)=ही अप्पय (अप्प) 2/1 स्वार्थिक 'य' प्रत्यय

96 अप्पाणमप्पणा [(अप्पाण)+(अप्पणा)] अप्पाण (अप्पाण) 2/1 अप्पणा (अप्प) 3/1 रु घिदूण (रुध) संकृ दोपुण्णपावजोगेसु [(दो)—(पुण्ण)—(पाव)—(जोग) 7/2] दंसणणाणम्हि [(दसण)-(णाण) 7/1] ठिदो (ठिद) भूकृ 1/1 अनि इच्छाविरदो

[(इच्छा)—(विरद) भूकृ 1/1 अनि] य (अ)=तथा अण्णम्हि (अण्ण) 7/1

97 जो (ज) 1/1 सवि सव्वसंगमुक्को [(सव्व) वि –(संग)–(मुक्क) भूकृ 1/1 अनि] झायदि (झा) व 3/1 सक अप्पाणमप्पणा [(अप्पाणं) + (अप्पणा)] अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 अप्पणा (अप्प) 3/1 अप्पा (अप्प) 1/1 ण (अ)=नहीं वि (अ)=कभी कम्मं (कम्म) 1/1 णोकम्मं (णोकम्म) 1/1 चेदा (चेद) 1/1 चिंतेदि (चिंत) व 3/1 सक एयत्तं (एयत्त) 2/1

98 अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 झायंतो (झा) वकृ 1/1 दंसणणाणमइओ [(दंसण)–(णाणमइअ) 1/1 वि] अणण्णमओ (अणण्णमअ) 1/1 वि लहदि (लह) व 3/1 सक अचिरेण (क्रिविअ)=शीघ्र अप्पाणमेव [(अप्पाणं) + (एव)] अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 एव (अ)=ही सो (त) 1/1 सवि कम्मपविमुक्कं [(कम्म)— (पविमुक्क) भूकृ 2/1 अनि]

99 जह (अ) =जैसे विसमुवभुञ्जंतो [(विसं) + (उवभुञ्जंतो)] विसं (विस) 1/1 उवभुञ्जंतो (उवभुञ्जंतो) वकृ कर्म 1/1 अनि वेज्जो (वेज्ज) 1/1 वि पुरिसो (पुरिस) 1/1 ण (अ)=नहीं मरणमुवयादि [(मरणं) + (उवयादि)] मरणं (मरण) 2/1 उवयादि (उवया) व 3/1 सक पोग्गलकम्मस्सुदयं [(पोग्गल) + (कम्मस्स) + (उदयं)] [(पोग्गल)—(कम्म) 6/1] उदयं 2/1 तह (अ) =वैसे ही भुञ्जदि (भुञ्ज) व 3/1 सक णेव (अ)=नहीं णाणी (णाणि) 1/1 वि वज्झदे (वज्झदे) व कर्म 3/1 सक अनि

100 सेवंतो (सेव) वकृ 1/1 वि (अ)=भी ण (अ)=नहीं सेवदि (सेव) व 3/1 सक असेवमाणो (असेव) वकृ 1/1 वि (अ)= किन्तु सेवगो (सेवग) 1/1 वि को वि (क) 1/1 स पगरणचेट्ठा

[(प–गरण) –(चेट्ठ) 5/1] कस्स (क) 6/1 स वि (अ) =भी ण (अ)=नहीं य (अ)= बिल्कुल पायरणो[1] (पायरण) 1/1 वि त्ति (अ)=निश्चय ही सो (त) 1/1 सवि होदि (हो) व 3/1 अक

101 उदयविवागो [(उदय)—(विवाग) 1/1] विविहो (विविह) 1/1वि कम्माण वि(कम्म)6/2 वण्णिदो(वण्ण)भूकृ1/1 जिणवरेहिं (जिणवर) 3/2 ण (अ) =नहीं हु (अ) =निश्चय ही ते (त) 1/2 सवि मज्झ (अम्ह) 6/1 स सहावा (सहाव) 1/2 जाणगभावो [(जाणग) वि—(भाव) 1/1] दु (अ) =तो अहमेक्को [(अह) + (एक्को] अह (अम्ह) 1/1 स एक्को (एक्क) 1/1 सवि

102 एवं (अ)=इस प्रकार सम्मादिट्ठी (सम्मादिट्ठि) 1/1 वि अप्पाण (अप्पाण) 2/1 मुणदि (मुण) व 3/1 सक जाणगसहाव [(जाणग)—(सहाव) 2/1] उदय (उदय) 2/1 कम्मविवाग [(कम्म) —(विवाग) 2/1] च (अ)=और मुयदि (मुय) व 3/1 सक तच्चं (तच्च) 2/1 वियाणतो (वियाण) वकृ 1/1

103 परमाणुमेत्तय [(परमाणु) —(मेत्त) 1/1 स्वार्थिक 'य' प्रत्यय] पि (अ) =भी हु (अ) =निस्सदेह रागादीण [(राग)—(आदि) 6/2] तु (अ)=पाद–पूर्ति विज्जदे (विज्ज) व 3/1 सक जस्स (ज) 6/1 स ण (अ)=नहीं वि (अ) =तो भी सो (त) 1/1 सवि जाणदि (जाण) व 3/1 सक अप्पाणयं (अप्पाण) 2/1 स्वार्थिक 'य' प्रत्यय तु (अ)=पाद–पूर्ति सव्वागमधरो [(सव्व) + (आगम) + (धरो)] [(सव्व) वि—(आगम)— (धर) 1/1 वि] वि (अ)=भी

1 प्राकरणिक=प्राकरण (वि) (Monier Williams . P 701 Col III) ।

104. अप्पाणमयाणंतो [(अप्पाण) + (अयाणंतो)] अप्पाण (अप्पाण) 2/1 अयाणंतो (अ—याण) वकृ 1/1 अणप्पय (अणप्प) 2/1 स्वार्थिक 'य' प्रत्यय चावि [(च) + (आवि)] च (अ)=और आवि (अ)=भी सो (त) 1/1 सवि अयाणंतो (अ—याण) वकृ 1/1 किह (अ)=कैसे होदि[1] (हो) व 3/1 अक सम्मदिट्ठी (सम्मदिट्ठि) 1/1 वि जीवाजीवे [(जीव) + (अजीवे)] [(जीव) —(अजीव)[2] 7/1]

105. णाणगुणेण [(णाण)—(गुण) 3/1] विहीणा[3] (विहीण) 5/1 वि एद (एद) 2/1 सवि तु (अ)=पाद-पूर्ति पद (पद) 2/1 बहू (बहु) 1/2 वि वि (अ)=भत ण (अ)=नहीं लहंति (लह) व 3/1 सक त (अ)=इसलिए गिण्ह (गिण्ह) विधि 2/1 सक णियदमेद [(णियद) + (एद)] णियद (णियद) 2/1 वि एद (एद) 2/1 सवि जदि (अ)=यदि इच्छसि (इच्छ) व 2/1 सक कम्मपरिमोक्ख [(कम्म)—(परिमोक्ख) 2/1]

106 एदम्हि (एअ) 7/1 सवि रदो (रद) भूकृ 1/1 अनि णिच्च (अ)=सदा संतुट्ठो (संतुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि होहि (हो) विधि 2/1 अक णिच्चमेदम्हि [(णिच्च) + (एदम्हि)] णिच्चं (अ) =सदा एदम्हि (एद) 7/1 सवि एदेण (एद) 3/1 स तित्तो (तित्त) 1/1 वि होहिदि (हो) भवि 3/1 सक तुह (तुम्ह) 4/1 स उत्तम (उत्तम) 1/1 वि सोक्ख (सोक्ख) 1/1

---

1 प्रश्नवाचक शब्दों के साथ वर्तमान काल का प्रयोग प्राय भविष्यत् काल के अर्थ मे होता है।

2 कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3—135)

3 किसी कार्य का कारण व्यक्त करने के लिए संज्ञा में तृतीया या पंचमी का प्रयोग किया जाता है।

107 मज्झ (अम्ह) 6/1 स परिग्गहो (परिग्गह) 1/1 जदि (अ) = यदि तदो (अ)=तब अहमजीवद [(अहं)+(अजीवद)] अहं (अम्ह) 1/1 स अजीवद (अजीवदा) 2/1 तु (अ)=ही गच्छेज्ज (गच्छ) भवि 1/1 सक णादेव [(णादा)+(एव)] णादा (णादु) 1/1 वि एव (अ)=ही जम्हा (अ)=चूंकि तम्हा (अ) =इसलिए ण (अ)=नहीं परिग्गहो (परिग्गह) 1/1 मज्झ (अम्ह) 6/1 स

108 छिज्जदु (छिज्जदु) विधिकर्म 3/1 सक अनि वा (अ)=अथवा भिज्जदु (भिज्जदु) विधिकर्म 3/1 सक अनि णिज्जदु (णिज्जदु) विधिकर्म 3/1 सक अनि अहव (अ)=या जादु (जा) विधि 3/1 सक विप्पलय (विप्पलय) 1/1 जम्हा तम्हा (अ)=किसी कारण से गच्छदु (गच्छ) विधि 3/1 सक तहावि (अ)=तो भी ण (अ) =नहीं परिग्गहो (परिग्गह) 1/1 मज्झ (अम्ह) 6/1 स

109 अपरिग्गहो (अपरिग्गह) 1/1 वि अणिच्छो (अणिच्छ) 1/1 वि भणिदो (भण) भूकृ 1/1 णाणी (णाणि) 1/1 वि य (अ)=भी णेच्छदे [(ण)+(इच्छदे)] ण (अ)=नहीं इच्छदे (इच्छ) व 3/1 सक धम्म (धम्म) 2/1 अपरिग्गहो (अपरिग्गह) 1/1 वि दु (अ)=तो धम्मस्स (धम्म) 6/1 जाणगो (जाणग) 1/1 वि तेण (अ)=इसलिए सो (त) 1/1 सवि होदि (हो) व 3/1 अक

110 अधम्म(अधम्म) 2/1 अधमस्स(अधम) 6/1 बाकी के लिए देखें 109

111 एमादिए [(एम)+(आदिए)] एम (अ)=इस प्रकार आदिए (आदिअ) 1/1 दु (अ)=पादपूरक विविहे (विविह) 2/2 वि

1 विप्रलय (विप्पलय)=सर्वनाश (आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश)।

सव्वे (सव्व) 2/2 सवि भावे (भाव) 2/2 य (अ)=पादपूरक णेच्छदे [(ण)+(इच्छदे)] ण (अ)=नही इच्छदे (इच्छ) व 3/1 सक णाणी (णाणि) 1/1 वि जाणगभावो [(जाणग)—(भाव) 1/1] णियदो (णियद) 1/1 वि णीरालवो (णीरालव) 1/1 वि दु (अ)=तथा सव्वत्थ (अ)=हर समय

112 णाणी (णाणि) 1/1 वि रागप्पजहो [(राग)—(प्पजह) 1/1 वि] हि (अ)=निश्चय ही सव्वदव्वेसु [(सव्व)—(दव्व) 7/2] कम्ममज्झगदो [(कम्म)—(मज्झ)—(गद) भूकृ 1/1 अनि] णो (अ)=नही लिप्पदि (लिप्पदि) व कर्म 3/1 सक अनि रजएण (रजअ) 3/1 दु (अ)=अत कद्दममज्झे [(कद्दम)—(मज्झे) 7/1 जहा (अ)=जिस प्रकार कणय (कणय) 1/1

113 अण्णाणी (अण्णाणि) 1/1 वि पुण (अ)=और रत्तो (रत्त) भूकृ 1/1 अनि हि (अ)=निस्सदेह सव्वदव्वेसु [(सव्व)—(दव्व) 7/2] कम्ममज्झगदो [(कम्म)—(मज्झ)—(गद) भूकृ 1/1 अनि] लिप्पदि (लिप्पदि) व कर्म 3/1 सक अनि कम्मरयेण [(कम्म)—(रय) 3/1] दु (अ)=अत कद्दममज्झे [(कद्दम) —(मज्झ) 7/1] जहा (अ)=जिस प्रकार लोह (लोह) 1/1

114 भुञ्जतस्स (भुञ्ज) वकृ 6/1 वि (अ)=भी विविहे (विविह) 2/2 वि सचित्ताचित्तमिस्सिए [(सचित्त)+(अचित्त)+(मिस्सिए)] [(सचित्त)-(अचित्त)-(मिस्स) भूकृ 2/2] दव्वे (दव्व) 2/2 सखस्स (सख) 6/1 सेदभावो [(सेद) वि—(भाव) 1/1] ण वि (अ)=कभी नही सक्कदि[1] (सक्कदि) व कर्म 3/1 सक अनि किण्हगो (किण्ह) 1/1 वि स्वार्थिक 'ग' प्रत्यय कादु (कादु) हेकृ अनि

---

1 हेत्वर्थ कृदन्त (कादु) के साथ 'सक्कदि' को कर्म वाच्य का अर्थ दिया जाता है।

115. तह (अ)=उसी प्रकार णाणिस्स (णाणि) 6/1 दु (अ)= पादपूर्ति विविहे (विविह) 2/2वि सचित्ताचित्तमिस्सिए[(सचित्त)+(अचित्त)+(मिस्सिए)] [(सच्चित्त)-(अचित्त)-(मिस्स) भूकृ 2/2] दव्वे (दव्व) 2/2 भुञ्जतस्स (भुञ्ज) वकृ 6/1 वि (अ) =भी णाण (णाण) 1/1 ण (अ)=नहीं सक्कमण्णाणदं [(सक्क)+(अण्णाणद)] सक्कं (सक्कं) विधिकृ 1/1 अनि. अण्णाणद[1] (अण्णाण) 2/1 वि स्वार्थिक 'द' प्रत्यय णेदु (णी) हेकृ अनि

116 जइया (अ)=जब स (त) 1/1 सवि एव (अ)=ही संखो (सङ्ख) 1/1 सेदसहाव [(सेद) वि-(सहाव) 2/1] सय (अ)=स्वय पजहिदूण (पजह) सकृ गच्छेज्ज (गच्छ) व 3/1 सक किण्हभावं [(किण्ह)-(भाव) 2/1] तइया (अ)=तब सुक्कत्तण (सुक्कत्तण) 2/1 पजहे (पजह) व 3/1 सक

117 तह (अ)=उसी प्रकार णाणी (णाणि) 1/1 वि वि (अ)=भी हु (अ)=निश्चय ही जइया (अ)=जब णाणसहावं [(णाण)—(सहाव) 2/1] सय (अ)=स्वयं पजहिदूण (पजह) सकृ अण्णाणेण (अण्णाण) 3/1 वि परिणदो (परिणद) भूकृ 1/1 अनि तइया (अ)=तब अण्णाणद (अण्णाण) 2/1 वि स्वार्थिक 'द' प्रत्यय गच्छे (गच्छ) व 3/1 सक

118 सम्मादिट्ठी (सम्मादिट्ठि) 1/2 जीवा (जीव) 1/2 णिस्सका (णिस्सक) 1/2 वि होंति (हो) व 3/2 अक णिब्भया (णिब्भय) 1/2 वि तेण (अ)=इसलिए सत्तभयविप्पमुक्का [(सत्त) वि—(भय)—(विप्पमुक्क) 1/2 वि] जम्हा (अ)=चूँकि तम्हा (अ)=इसलिए दु (अ)=निश्चय ही

---

1 गमन अर्थ में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

119 जो (ज) 1/1 सवि दु (अ)= पादपूरक ण (अ)=नहीं करेदि (कर) व 3/1 सक कम्म (कम्म) 2/1 कम्मफले [(कम्म)—(फल) 2/2] तह य (अ)= तथा सव्वधम्मेसु[1] [(सव्व)—(धम्म) 7/2] सो (त) 1/1 सवि णिक्कखो (णिक्कख) 1/1 वि चेदा (चेद) 1/1 सम्मादिट्ठी (सम्मादिट्ठि) 1/1 मुणेदव्वो (मुण) विधिकृ 1/1

120 दुगञ्छ (दुगञ्छ) 2/1 सव्वेसिमेव [(सव्वेसिं)+(एव)] सव्वेसिं[2] (सव्व) 6/2 वि एव (अ)=भी. धम्माण[1] (धम्म) 6/2 सो (त) 1/1सवि खलु अ)=निश्चय ही णिव्विदिगिञ्छो (णिव्विदिगिञ्छ) 1/1 सम्मादिट्ठी (सम्मादिट्ठि) 1/1 (बाकी के लिए देखे 119)

121 हवदि (हव) व 3/1 अक असम्मूढो (असम्मूढ) 1/1 वि सद्दिट्ठि[3] (स-दिट्ठि) मूलशब्द 1/1 वि सव्वभावेसु [(सव्व)-(भाव) 7/2] अमूढदिट्ठी (अमूढदिट्ठि) 1/1 (बाकी के लिए देखे 119)

122 सिद्धभत्तिजुत्तो [(सिद्ध)-(भत्ति)-(जुत्त) भूकृ 1/1 अनि] उवगूहणगो (उवगूहणग) 1/1 वि दु (अ)=और सव्वधम्माण [(सव्व)-(धम्म) 6/2] उवगूहणगारी (उवगूहणगारि) 1/1वि बाकी के लिए देखे 119

123 उम्मग्ग[4] (उम्मग्ग) 2/1 गच्छत (गच्छ) वकृ 2/1 सग (सग) 2/1वि पि (अ)=पादपूरक मग्गे (मग्ग)7/1 ठवेदि(ठव) व 3/1सक

---

1 कभी कभी द्वितीया के स्थान पर सप्तमी का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 3-135)।

2 कभी कभी सप्तमी के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण ' 3-134)।

3 पद्य मे किसी भी कारक के लिए मूल शब्द काम मे लाया जा सकता है। (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ, 517)।

4 गमन अर्थ की क्रियाओं के साथ द्वितीया विभक्ति होती है।

सक जो (ज) 1/1 सवि चेदा (चेद) 1/1 सो (त) 1/1 सवि ठिदिकरणाजुत्तो [(ठिदिकरणा)[1]–(जुत्त) 1/1 वि] सम्मादिट्ठी (सम्मादिट्ठि) 1/1 वि मुणेदव्वो (मुण) विधिकृ 1/1

124 जो (ज) 1/1 सवि कुणदि (कुण) व 3/1 सक वच्छलत्त (वच्छलत्त) 2/1 तिण्ह[2] (ति) 6/2 साहूण[2] (साहु) 6/2 मोक्खमग्गम्मि [(मोक्ख)–(मग्ग) 7/1] सो (त) 1/1 सवि वच्छलभावजुदो [वच्छल)–(भाव)–(जुद) 1/1 वि] सम्मादिट्ठी (सम्मादिट्ठी) 1/1 वि मुणेदव्वो (मुण) विधिकृ 1/1

125 विज्जारहमारूढो [(विज्जा) + (रह) + (आरूढो)] [(विज्जा)–(रह)[3] 2/1] आरूढो (आरूढ)[4] भूकृ 1/1 अनि मणोरहपहेसु[5] [मणोरह)[6]–(पह) 7/2] भमइ (भम) व 3/1 सक जो (ज) 1/1 सवि चेदा (चेद) 1/1 सो (त) 1/1 सवि जिणणाणपहावी [(जिण)–(णाण)–(पहावि) 1/1 वि] सम्मादिट्ठी (सम्मादिट्ठि) 1/1 वि मुणेदव्वो (मुण) विधिकृ 1/1

---

1 समासगत शब्दों में स्वर ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाया करते हैं। यहाँ ठिदिकरण' का ठिदिकरणा' हुआ है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 1–4)।

2 कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-134) तीण्ह→तिण्ह (दीर्घ स्वर के आगे संयुक्त स्वर हो तो, उस दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर हो जाया करता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण 1-84)।

3 कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3–137)।

4 'आरूढ' प्राय कर्तृवाच्य में प्रयुक्त होता है।

5 कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3–135)।

6 'मणोरह'=संकल्परूपी नायक, यहाँ 'रह' का अर्थ 'नायक' है।

126 जह (अ) = जैसे णाम (अ) = वाक्यालकार को वि (क) 1/1 सवि पुरिसो (पुरिस) 1/1 णेहब्भत्तो [(णेह) - (ब्भत्त) भूक्र 1/1 अनि] दु (अ) = पादपूरक रेणुबहुलम्मि [(रेणु) — (बहुल) 7/1] ठाणम्मि (ठाण) 7/1 ठाइदूण (ठाअ) सक्र य (अ) = पादपूरक करेदि (कर) व 3/1 सक सत्थेहि (सत्थ) 3/2 वायाम (वायाम) 2/1

127 छिंददि (छिंद) व 3/1 सक भिंददि (भिंद) व 3/1 सक य (अ) = और तहा (अ) = तथा तालीतलकयलिवसपिंडीओ [(ताली) — (तल) — (कयलि) — (वस) — (पिंडी) 2/2] सच्चित्ताचित्ताण [(सच्चित्त) + (अचित्ताण)] [(सच्चित) वि - (अचित्त) 6/2] करेदि (कर) व 3/1 सक दव्वाणमुवघाद (दव्वाण) + (उवघाद)] दव्वाण (दव्व) 6/2 उवघाद (उवघाद) 1/1

128 उवघाद (उवघाद) 2/1 कुव्वतस्स (कुव्व) वकृ 6/1 तस्स (त) 6/1 णाणाविहेहि (णाणाविह) 3/2 करणेहि (करण) 3/2 णिच्छयदो (णिच्छय) पचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय चिंतेज्ज (चिंत) व 1/2 सक हु (अ) = पादपूक किं (क) 1/1 सवि पच्चयगो (पच्चय) 1/1 ग' स्वार्थिक दु (अ) = निश्चय ही रयवधो [(रय) — (वध) 1/1]

129. जो (ज) 1/1 सवि सो (त) 1/1 सवि दु (अ) = पादपूरक णेहभावो [(णेह) — (भाव) 1/1] तम्हि (त) 7/1 स णरे (णर) 7/1 तेण (त) 3/1 स तस्स (त) 6/1 स रयवधो [(रय) - (वध) 1/1] णिच्छयदो [णिच्छय) पचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय विण्णेय (विण्णेय) विधिकृ 1/1 अनि ण (अ) = नहीं कायचेट्ठाहि [(काय) - (चेट्ठ) 3/2] सेसाहि (सेस) 3/2 वि

130 एव (अ) = इस प्रकार मिच्छादिट्ठी (मिच्छादिट्ठि) 1/1 वि वट्टतो (वट्ट) वकृ 1/1 बहुविहासु [(बहु)-(विह) 7/2] चिट्ठासु (चिट्ठा) 7/2 रायादी [(राय) + (आदि)] [(राय)-(आदि) 2/2] उवओगे (उवओग) 7/1 कुव्वतो (कुव्व) वकृ 1/1 लिप्पदि (लिप्पदि) व कर्म 3/1 सक अनि रयेण (रय) 3/1

131 जोगेसु (जोग) 7/2 अकरतो (अ-कर) वकृ) 1/1 रागादी [(राग) + (आदी)] [(राग)-(आदि) 2/2]

(बाकी के लिए देखें 130)

132 अज्झवसिदेण (अज्झवसिद) 3/1 वधो (वध) 1/1 सत्ते (सत्त) 2/2 मारेहि (मार) विधि 2/1 सक मा (अ) = मत व (अ) = अथवा एसो (एत) 1/1 सवि बधसमासो [(वध)-(समास) 1/1] जीवाण (जीव) 6/2 णिच्छयणयस्स (णिच्छयणय) 6/1

133 एवमलिये [(एव) + (अलिये)] एव (अ) = इस प्रकार अलिये (अलिय) 7/1 अदत्ते (अदत्त) 7/1 अवभचेरे (अवभचेर) 7/1 परिग्गहे (परिग्गह) 7/1 चेव (अ) = पादपूरक कीरदि (कीरदि) व कर्म 3/1 सक अनि अज्झवसाण (अज्झवसाण) 1/1 ज (ज) 1/1 सवि तेण (त) 3/1 स दु (अ) = ही वज्झदे (वज्झदे) व कर्म 3/1 अनि पाव (पाव) 1/1

134 तह (अ) = उसी प्रकार वि (अ) = ही य (अ) = और सच्चे (सच्च) 7/1 दत्ते (दत्त) 7/1 बम्हे (बम्ह) 7/1 अपरिग्गहत्तणे (अपरिग्गहत्तण) 7/1 चेव (अ) = पादपूरक कीरदि (कीरदि) व कर्म 3/1 सक अनि अज्झवसाण (अज्झवसाण) 1/1 ज (ज) 1/1 अवि तेण (त) 3/1 स दु (अ) = ही वज्झदे (वज्झदे) व कर्म 3/1 सक अनि पुण्ण (पुण्ण) 1/1

135 वत्थु (वत्थु) 2/1 पडुच्च (अ)=आश्रय करके त (त) 1/1 सवि पुण (अ)=फिर अज्झवसाण (अज्झवसाण) 1/1 तु (अ)=निम्सदेह होदि (हो) व 3/1 अक जीवाणं (जीव) 6/2 ण (अ) =नहीं हि (अ)=वास्तव मे वत्थुदो (वत्थु) पचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय दु (अ)=तो भी बधो (बध) 1/1 अज्झवसाणेण (अज्झवसाण) 3/1 त्ति (अ)=अत

136 एव (अ)=इस प्रकार ववहारणओ (ववहारणअ) 1/1 पडिसिद्धो (पडिसिद्ध) भूकृ 1/1 अनि जाण (जाण) विधि 2/1 सक णिच्छयणयेण(णिच्छयणय)3/1 णिच्छयणयासिदा[(णिच्छयणय) +(आसिदा)] [(णिच्छयणय)-(आसिद) भूकृ 1/2 अनि] पुण (अ)=और मुणिणो (मुणि) 1/2 पावति (पाव) व 3/2 सक णिव्वाणं (णिव्वाण) 2/1

137 मोक्खं[1] (मोक्ख) 2/1 असद्दहतो[1] (असद्दह) वकृ 1/1 अभवियसत्तो [(अभविय) वि-(सत्त) 1/1] दु (अ)=भी जो (ज) 1/1 सवि अधीयेज्ज (अधी[2] य) व 3/1 सक पाठो (पाठ) 1/1 ण (अ)=नहीं करेदि (कर) व 3/1 सक गुण (गुण) 2/1 असद्दहतस्स (असद्दह) वकृ 4/1 णाण (णाण) 2/1 तु (अ)=तो

---

1 श्रद्धा के योग में द्वितीय विभक्ति का प्रयोग होता है।

2 अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त शेष स्वरान्त धातुओं में 'अ (य)' विकल्प से जुड़ता है। अत यहाँ 'अधी+अ (य)' हुआ है।

138 आयारादी [(आयार)+(आदी)] [(आयार)-(आदि) 2/2] णाण (णाण) 1/1 जीवादी [(जीव)+(आदी)] [(जीव)—(आदि)[1] 2/2] दसण (दसण) 1/1 च (अ)=और विण्णेय (विण्णेय) विधि 1/1 अनि छज्जीवणिकं[2] (छज्जीवणिका) 2/1 च (अ)=पादपूरक. तहा (अ)=इस प्रकार भणदि (भण) व 3/1 सक चरित्त(चरित्त) 1/1. तु (अ)=तो ववहारो(ववहार) 1/1

139 ण (अ)=नहीं वि (अ)=कभी भी रागदोसमोहं [(राग)—(दोस)—(मोह) 2/1] कुव्वदि (कुव्व) व 3/1 सक णाणी 1/1 (णाणि) 1/1 वि कसायभावं [(कसाय)-(भाव) 2/1] वा (अ) =अथवा सयमप्पणो [(सयं)+(अप्पणो)] सय (अ)=स्वय अप्पणो (अप्प) 6/1 सो (त) 1/1 सवि तेण (अ)=इसलिए कारगो (कारग) 1/1 वि तेसिं(त) 6/2 स भावाण (भाव) 6/2

140 जह (अ)=जैसे बंधे[3] (बंध) 7/1 चिंतंतो (चिंत) वकृ 1/1 बंधणबद्धो [(बंधण)-(बद्ध) भूकृ 1/1 अनि] ण (अ)=नहीं पावदि (पाव) व 3/1 सक विमोक्ख (विमोक्ख) 2/1 तह (अ) =उसी प्रकार जीवो (जीव) 1/1 वि (अ)=भी

---

1 कभी कभी सप्तमी के स्थान पर द्वितीया का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-137)।

2 छज्जीवणिकाय→छज्जीवणिका (व्यजन लोप अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ 123)।

3 कभी कभी द्वितीया के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-135)

141 जह (अ=) जैसे वधे[1] (वध) 7/1 छेत्तूण (छेत्तूण) सकृ अनि य (अ)=पादपूर्ति वधणवद्धो [(वधण)—(वद्ध) भूकृ 1/1 अनि] दु (अ) = पादपूर्ति पावदि (पाव) व 3/1 सक विमोक्खं (विमोक्ख) 2/1 तह (अ)=वैसे ही य (अ)=पादपूर्ति जीवो (जीव) 1/1 सपावदि (सपाव) व 3/1 सक

142 वधाण (वध) 6/2 च (अ)=पादपूर्ति सहाव (सहाव) 2/1 वियाणिदु (वियाण) सकृ अप्पणो (अप्प) 6/1 च (अ)=और वधेसु[1] (वध) 7/2 जो (ज) 1/1 सवि विरज्जदि (विरज्ज) व 3/1 अक सो (त) 1/1 सवि कम्मविमोक्खण [(कम्म)—(विमोक्खण) 2/1] कुणदि (कुण) व 3/1 सक

143 जीवो (जीव) 1/1 वधो (वध) 1/1 य (अ)=पादपूर्ति तहा (अ) = तथा छिज्जति (छिज्जति) व कर्म 3/2 सक अनि सलक्खणेहि [(स) वि—(लक्खण) 3/2] णियदेहिं (णियद) 3/2 पण्णाछेदणएण [(पण्णा)—(छेदणअ) स्वार्थिक 'अ' प्रत्यय 3/1] दु (अ)=पादपूर्ति छिण्णा (छिण्णा) भूकृ 1/2 अनि णाणत्तमावण्णा [(णाणत्त) + (आवण्णा)] णाणत्त (णाणत्त) 2/1 आवण्णा (आवण्णा) भूकृ 1/2 अनि

144 जीवो (जीव) 1/1 वधो (वध) 1/1 य (अ)=पादपूर्ति तहा (अ) = तथा छिज्जति (छिज्जति) व कर्म 3/2 सक अनि सलक्खणेहि [(स) वि-(लक्खण) 3/2] णियदेहिं (णियद) 3/2

---

1 कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-135)।

2 कभी कभी सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पंचमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-136)।

छेदेदव्वो (छेद) विधिकृ 1/1 सुद्धो (सुद्ध) 1/1 वि अप्पा (अप्प) 1/1 य (अ) =और घेत्तव्वो (घेत्तव्वो) विधिकृ 1/1 अनि

145 किह (अ)=कैसे सो (त) 1/1 सवि घेप्पदि (घेप्पदि) व कर्म 3/1 सक अनि अप्पा (अप्प) 1/1 पण्णाए (पण्णा) 3/1 दु (अ)=ही घेप्पदे (घेप्पदे) व कर्म 3/1 सक अनि जह (अ)= जैसे पण्णाइ (पण्णा) 3/1 विहत्तो (विहत्त) भूकृ 1/1 अनि तह (अ)=वैसे ही पण्णाए (पण्णा) 3/1 व (अ)=हीं घेत्तव्वो (घेत्तव्वो) विधिकृ 1/1 अनि

146 पण्णाए (पण्णा) 3/1 घेत्तव्वो (घेत्तव्वो) विधिकृ 1/1 अनि जो (ज) 1/1 सवि चेदा (चेद) 1/1 सो (त) 1/1 सवि अहं (अम्ह) 1/1 स तु (अ)=ही णिच्छयदो (णिच्छय) पचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय अवसेसा (अवसेस) 1/2 वि जे (ज) 1/2 सवि भावा (भाव) 1/2 ते (त) 1/2 सवि मज्झ[1] (अम्ह) 6/1 स परे (पर) 1/2 सवि त्ति (अ)=अत. णादव्वा (णा) विधिकृ 1/2

147 पण्णाए (पण्णा) 3/1 घेत्तव्वो (घेत्तव्व) विधिकृ 1/1 अनि. जो (ज) 1/1 सवि दट्ठा (दट्ठा) 1/1 सो (त) 1/1 सवि अह (अम्ह) 1/1 स तु (अ)=पादपूरक णिच्छयदो (णिच्छय) पचमी अर्थक 'दो' प्रत्यय अवसेसा (अवसस) 1/2 वि जे (ज) 1/2 सवि भावा (भाव) 1/2 ते (त) 1/2 सवि मज्झ[1] (अम्ह) 6/1 परे (पर) 1/2 सवि त्ति (अ)=इस प्रकार णादव्वा (णा) विधिकृ 1/2

---

1 कभी कभी पचमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम-प्राकृत-व्याकरण 3—134) ।

148 णादा (णादु) 1/1 वि (बाकी के लिए देखें 147)

149 अण्णाणी (अण्णाणि) 1/1 वि कम्मफल [(कम्म)-(फल) 2/1] पयडिसहावट्ठिदो [(पयडि)-(सहाव)-(ट्ठिद) 1/1 वि] दु (अ) =ही वेदेदि (वेद) व 3/1 णाणि (णाणि) 1/1 वि पुण (अ)=किन्तु जाणदि (जाण) व 3/1 सक उदिद (उदिद) भूकृ 2/1 अनि ण (अ)=नही

150 ण (अ)=नही मुयदि (मुय) व 3/1 सक पयडिमभव्वो [(पयडिं) + (अभव्वो)] पयडिं (पयडि) 2/1 अभव्वो (अभव्व) 1/1 वि सुट्ठु (अ)=भली प्रकार वि (अ)=भी अज्झाइदूण (अज्झाअ) सकृ सत्थाणि (सत्थ) 1/2 गुडदुद्ध [(गुड)-(दुद्ध) 2/1] पि (अ)=भी पिवता (पिव) वकृ 1/2 पण्णया (पण्णय) 1/2 णिव्विसा (णिव्विस) 1/2 वि होंति (हो) व 3/2 अक

151 णिव्वेयसमावण्णो [(णिव्वेय)—(समावण्ण) भूकृ 1/1 अनि] णाणी (णाणि) 1/1 वि कम्मफल [(कम्म)—(फल) 2/1] वियाणादि[1] (वियाण) व 3/1 सक महुर (महुर) 2/1 वि कडुय (कडुय) 2/1 वि बहुविहमवेदगो [(बहुविह) + (अवेदगो)] बहुविह (बहुविह) 2/1 वि अवेदगो (अवेदग) 1/1 वि तेण (अ)=इसलिए सो (स) 1/1 सवि होदि (हो) व 3/1 अक

152. ण वि (अ)=न ही कुव्वदि (कुव्व) व 3/1 सक वेददि (वेद) व 3/1 सक णाणी (णाणि) 1/1 वि कम्माइ (कम्म) 2/2 बहुप्पयाराइ [(बहु) वि-(प्पयार) 2/2] जाणदि (जाण) व 3/1 सक पुण (अ)=किन्तु कम्मफल [(कम्म)-(फल) 2/1]

---

1 वर्तमान काल के प्रत्ययों के होने पर कभी कभी अन्त्यस्थ 'अ' के स्थान 'आ' हो जाता है हेम-प्राकृत-व्याकरण 3-158 वृत्ति)।

वध (वध) 2/1 पुण्ण (पुण्ण) 2/1 च (अ)=और पावं (पाव) 2/1 च (अ)=तथा

153 जीवस्स (जीव) 6/1 जे (ज) 1/2 सवि गुणा (गुण) 1/2 केई (अ)=कोई णत्थि (अ)=नहीं ते (त) 1/2 सवि खलु (अ) = निश्चय ही परेसु (पर) 7/2 वि दव्वेसु (दव्व) 7/2 तम्हा (अ)=इसलिए सम्मादिट्ठिस्स (सम्मादिट्ठि) 6/1 वि रागो (राग) 1/1 दु (अ)=बिल्कुल विसएसु (विसअ) 7/2

154 पासडिय[1] (पासडिय) मूलशब्द 6/2 लिंगाणि (लिंग) 2/1 य[2] (अ)=और गिहिलिंगाणि [(गिहि)-(लिंग) 2/1] य[2] (अ) =और बहुप्पयाराणि (बहुप्पयार) 2/2 वि घेत्तु (घेत्तु) सक्र अनि वदंति (वद) व 3/2 सक मूढा (मूढ) 1/2 वि लिंगमिण [(लिंग)+(इण)] लिंग (लिंग) 1/1 इण(इम) 1/1 मोक्खमग्गो [(मोक्ख)-(मग्ग) 1/1] त्ति (अ)=इस प्रकार

155 ण (अ)=नहीं दु (अ)=निश्चय ही होदि (हो) व 3/1 अक मोक्खमग्गो [(मोक्ख)-(मग्ग) 1/1] लिंग (लिंग) 1/1 ज (अ) =क्योंकि देहणिम्ममा [(देह)—(णिम्मम) 1/2 वि] अरिहा (अरिह) 1/2 लिंग (लिंग) 2/1 मुइत्तु[3] (मुअ) सक्र दसणणाणचरित्ताणि [(दसण)-(णाण)-(चरित्त) 2/2] सेवते (सेव) व 3/2 सक

---

1 पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ 517)।

2 'और' अर्थ को प्रकट करने के लिए 'य' अव्यय कभी कभी दो बार प्रयोग किया जाता है।

3 मुअ→मुइत्तु (यहाँ उपर्युक्त 'मुइत्तुं' मे अनुस्वार का लोप हुआ है (हेम प्राकृत-व्याकरण 2-156 वृत्ति)।

156 ण (अ)=नही वि (अ)=भी एस (एत) 1/1 सवि मोक्खमग्गो [(मोक्ख)—(मग्ग) 1/1] पासण्डिय[1] (पासण्डिय) मूल शब्द गिहिमयाणि [(गिहि)—(मय) 1/2 वि] लिंगाणि (लिंग) 1/2 दंसणणाणचरित्ताणि [(दंसण)—(णाण)—(चरित्त) 2/2] मोक्खमग्ग [(मोक्ख)—(मग्ग) 2/1] जिणा (जिण) 1/2 विंति (ब्रू) व 3/2 सक

157 तम्हा (अ)=इसलिए जहित्तु[2] (जह) संकृ लिंगे (लिंग) 2/2 सागारणगारियेहि [(सागार) + (अणगारियेहि)] [(सागार)—(अणगारि) स्वार्थिक 'य' प्रत्यय 3/2] वा (अ)=पादपूर्ति गहिदे (गह) भूकृ 2/2 दंसणणाणचरित्ते [(दंसण)—(णाण)—(चरित्त) 7/1] अप्पाण (अप्पाण) 2/1] जुञ्ज (जुञ्ज) विधि 2/1 सक मोक्खपहे [(मोक्ख—(पह) 7/1]

158 मोक्खपहे [(मोक्ख)—(पह) 7/1] अप्पाण (अप्पाण) 2/1 ठवेहि (ठव) विधि 2/1 सक चेदयहि (चेदय) विधि 2/1 सक झाहि (झा) विधि 2/1 सक त (त) 2/1 सवि चेव (अ)=ही तत्थेव (अ)=वहाँ ही विहर (विहर) विधि 2/1 सक णिच्च (अ)=सदा मा (अ)=मत विहरसु (विहर) विधि 2/1 अक अण्णदव्वेसु [(अण्ण)—(दव्व) 7/2]

---

1 पद्य में किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है (पिशल प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)।

2 जह→जहित्तु (यहाँ उपर्युक्त जहित्तु' में अनुस्वार का लोप हुआ है।) (हेम-प्राकृत-व्याकरण, 2-146 वृत्ति)

159 पासडिय (पासडिय) मूल शब्द 6/2 लिंगेसु (लिंग) 7/2 व[1] (अ) =तथा गिहिलिंगेसु [(गिहि)—(लिंग) 7/2] व[1] (अ)=तथा बहुप्पयारेसु (बहुप्पयार) 7/2 कुव्वंति (कुव्व) व 3/2 सक जे (ज) 1/2 ममत्त (ममत्त) 2/1 तेहिं (त) 3/2 स ण (अ)= नहीं णाद (णा) भूकृ 1/1 समयसार (समयसार) 1/1

160 ववहारिओ (ववहारिअ) 1/1 वि पुण (अ)=पादपूर्ति णओ (णअ) 1/1 दोण्णि (दो) 2/2 वि (अ)=ही लिंगाणि (लिंग) 2/2 भणदि (भण) व 3/1 सक मोक्खपहे [(मोक्ख)—(पहे) 7/1] णिच्छयणओ [(णिच्छय)—(णअ) 1/1] दु (अ) =किन्तु णेच्छदि [(ण)+(इच्छदि)] ण (अ)=नहीं इच्छदि (इच्छ) व 3/1 सक मोक्खपहे [(मोक्ख)—(पह) 7/1] सव्वलिंगाणि [(सव्व)—(लिंग) 2/2]

---

1 तथा' अर्थ को प्रकट करने के लिए 'व' अव्यय कभी कभी दो बार प्रकट किया जाता है।

समयसार–चयनिका एव समयसार

गाथा-क्रम

चयनिका क्रम	समयसार क्रम	चयनिका क्रम	समयसार क्रम	चयनिका क्रम	समयसार क्रम
1	4	19	44	37	78
2	5	20	49	38	79
3	x	21	50	39	80
4	11	22	51	40	81
5	12	23	57	41	82
6	14	24	58	42	83
7	15	25	59	43	84
8	17	26	60	44	85
9	18	27	61	45	91
10	20	28	62	46	92
11	21	29	69	47	93
12	22	30	70	48	96
13	27	31	71	49	97
14	29	32	72	50	98
15	30	33	73	51	99
16	31	34	74	52	100
17	35	35	76	53	101
18	38	36	77	54	102

चयनिका क्रम	समयसार क्रम	चयनिका क्रम	समयसार क्रम	चयनिका क्रम	समयसार क्रम
55	103	76	150	97	188
56	104	77	151	98	189
57	105	78	152	99	195
58	106	79	153	100	197
59	107	80	154	101	198
60	108	81	155	102	200
61	126	82	156	103	201
62	127	83	157	104	202
63	128	84	158	105	205
64	129	85	159	106	206
65	130	86	160	107	208
66	131	87	166	108	209
67	141	88	167	109	210
68	142	89	168	110	211
69	143	90	177	111	214
70	144	91	181	112	218
71	145	92	183	113	219
72	146	93	184	114	220
73	147	94	185	115	221
74	148	95	186	116	222
75	149	96	187	117	223

चयनिका क्रम	समयसार क्रम	चयनिका क्रम	समयसार क्रम	चयनिका क्रम	समयसार क्रम
118	228	133	263	147	298
119	230	134	264	148	299
120	231	135	265	149	316
121	232	136	272	150	317
122	233	137	274	151	318
123	234	138	276	152	319
124	235	139	280	153	370
125	236	140	291	154	408
126	237	141	292	155	409
127	238	142	293	156	410
128	239	143	294	157	411
129	240	144	295	158	412
130	241	145	296	159	413
131	246	146	297	160	414
132	262				

सहायक पुस्तकें एवं कोष

1	समयसार	आचार्य कुन्दकुन्द सम्पादक श्री बलभद्र जैन (श्री कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली, 1978)
2	हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण भाग 1-2	व्याख्याता श्री प्यारचन्द्रजी महाराज (श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, मेवाडी बाजार, ब्यावर राजस्थान)
3	प्राकृत भाषाओं का व्याकरण	डॉ आर पिशल (बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना)
4	अभिनव प्राकृत व्याकरण	डॉ नेमिचन्द्र शास्त्री (तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)
5	प्राकृत भाषा एव साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ नेमीचन्द्र शास्त्री (तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)
6	प्राकृत मार्गोपदेशिका	प बेचरदास जीवनराज दोशी (मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली)
7	सस्कृत निबन्ध-दर्शिका	वामन शिवराम आप्टे (रामनारायण बेनीमाधव, इलाहाबाद)

8	प्रौढ़-रचनानुवाद कौमुदी	डॉ कपिलदेव द्विवेदी (विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
9	पाइअ-सद्द-महण्णवो	प हरगोविन्दास त्रिकमचन्द सेठ (प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी)
10	संस्कृत हिन्दी-कोश	वामन शिवराम आप्टे (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)
11	Sanskrta-English Dictionary	M Monier Williams (Munshiram Manoharlal, New-Delhi)
12	वृहत् हिन्दी-कोश	सम्पादक कालिकाप्रसाद आदि (ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस)

शुद्धि - पत्र

पृष्ठ	गाथा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
xvi	—	12	मासिक	मानसिक
3	1	1	निरुपण	निरूपण
5	5	1	निरुपण	निरूपण
16	47	1	परमप्पाणम कुव्व	परमप्पाणमकुव्व
19	49	3	प्राकर	प्रकार
24	71	1	कम्मसुह	कम्ममसुह
32	95	1	वियातो	वियाणतो
52	151	1	पाणी	णाणी
54	160	1	मोक्खपहो	मोक्खपहे